महाश्रमण सुनें उनकी परम्परायें सुनें

165

भिक्खु

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

८१२.३
कृष्ण|म

महाश्रमण सुनें उनकी परम्पराएँ सुनें

●

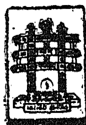
'भिक्खु'

बुद्ध-तनय
राहुल की
एक ऐसी कथा
जिसमें
ऐतिहासिक तथ्यात्मकता
और
औपन्यासिक
रसात्मकता
सुलभ
है

महाश्रमण सुनें !
उनकी परम्पराएँ सुनें !!

*

कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु'



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–१६९

सम्पादक एवं नियामक :

लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series : Title No. 169

MAHASHRAMAN SUNEN

UNAKEE PARAMPARAYEN SUNEN

(Fiction)

'BHIKKHU'

Bharatiya Jnanpith

Publication

First Edition 1963

Second Edition 1966

Price Rs. 3.00

©

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण १९६३

द्वितीय संस्करण १९६६

मूल्य ३.००

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी-५



जिन्होंने सदैव अपना
स्नेह और संरक्षण दिया—
उन पूज्य मामाजी
श्री डी० एन० पंचोली
फ़िल्म-निर्माता तथा वितरकको ।

कथा-सूत्र

महाश्रमण ही नहीं, आप भी सुनें ! यह इस लघु गाथाकी लघुतर गाथा है। आदरणीय बन्धु लक्ष्मीचन्द्र जैनका आग्रह था कि मैं राहुल-कथाका कुछ ऐसे आख्यान करूँ जिससे ऐतिहासिक तथ्यात्मकता और औपन्यासिक रसात्मकता दोनों ही उसमें सुलभ हो सकें। उन्हींकी इच्छाका यह फल है।

कथा कहनी राहुलकी ही थी, किन्तु बुद्धका व्यक्तित्व इतना विराट् रहा कि उस युगकी हर कथा उनके अपने व्यक्तित्वकी ही पार्श्व-छाया है। यही कारण है कि राहुल-कथा कहनेके लिए 'शिल्पी अहिरथ' को बुद्ध-गाथा कहनी पड़ी।

तो उन भगवान्, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धका सभक्ति स्मरण करते हुए इस अभिनव-पिटक (छोटी-सी कृतिको इतनी श्लाघा देनेके मोहको क्षमा करें) का विनियोग करता हूँ।

—*भिक्खु*

•
•
•

महाश्रमण सुनें !

उनकी परम्पराएँ सुनें !!

"यह नदी सुने। ये गुहा मन्दिर सुनें। वज्र-जैसी कठोर चट्टानोंके गर्भसे इन मनोहर चैत्योंको जन्म देनेवाले शिल्पी सुनें। उत्तरापथ, दक्षिणापथके जो साधक चितेरे, मूर्तिकार यहाँ एकत्र हुए वे सब सुनें। आज मैं शिल्पी अहिरथ आप सबसे, आप सबकी कलाओंके महत्तम अंशका दान माँगूँगा।"

समवेत स्वर उठा, "साधु अहिरथ ! साधु शिल्पी अहिरथ ! शास्त्रका तुम्हारा ज्ञान अगाध है। शत सहस्र वर्षका इतिहास तुम्हें जिह्वाग्र है। पत्थरोंमें भावोंको जन्म देनेमें तुम अद्वितीय हो। रंगों और रेखाओंके रहस्योंको तुमसे अधिक कौन जानता है ?"

अहिरथ आविष्ट था। उस ऊँची शिलापर स्थिर बैठे रहनेपर भी उसके भीतर-ही-भीतर भारी हलचल मची थी जो उसके नेत्रोंकी बेचैनी या मुँहकी बनती-बिगड़ती टेढ़ी रेखाओंमें उमड़-उमड़ आतीं। उसने जब पुनः बोलना आरम्भ किया तो स्वरका कम्पन बढ़ चला था, "आप सबके इस साधुवादसे मैं आश्वस्त हुआ। पर भद्रजन, मैं आत्म-स्तुति नहीं, आप सबसे कलाका दान चाहता हूँ। मुझे उस विषयमें भी आश्वस्त करें।"

कोई शताधिक व्यक्तियोंका समुदाय था। किन्तु जलाशय-सा शान्त। इतना शान्त कि चैत्य श्रेणीसे नीचे बहती हुई अल्पतोया बाघकी एक छोटी-सी वीचि तल या तटके किसी पत्थरसे टकरा जाती तो उस चैत्य श्रेणीके विशाल विहारमें एकत्र शिल्पी समुदायकी शान्ति कुछ वैसे ही भंग-सी होने लगती, जैसे शान्त

जलाशयमें उसपर छाया करनेवाले वटकी किसी शाखासे कोई चपल शाखाचारी कूद पड़ा हो।

तभी शिल्पी-सभामें-से एक वृद्धने अभ्युत्थानपूर्वक कहा, "भद्र अहिरथ, शिल्पियोंके सहयोगमें सन्देह न करो। मैं कदाचित् इस क्षेत्रका सबसे पुराना शिल्पी हूँ। मैंने अजन्ताकी इन निराली कठोर चट्टानोंमें नीड़ोंसे सुघर और भवनोंसे भव्य गुहा-मन्दिरोंके निर्माणकी पूर्ति देखी है। बड़ा कठिन और धीरजकी बलि माँगनेवाला कर्म था भद्र। वह भी पूरा हुआ। सुगतकी करुणा शिल्पियोंको बल देती रही। फिर स्वयं मैंने इन्हीं गुहाओंमें और भी भव्य निर्माण देखे। उस गुहामें कितना सुन्दर स्तूप शिल्पित हुआ है। लगता है, पत्थरमें स्वर्ण-कमल उग आया है। गुहा-द्वारोंपर यक्षों-गन्धर्वोंकी कैसी मूर्तियाँ प्रकट हो गयी हैं। इस गुहामें परिनिर्वाणकी वेलामें दाहिनी करवट सिंह-शय्या-से लेटे भगवान्की वह विशाल मूर्ति क्या कलाका महत्तम दान नहीं। उस अलौकिक कलासृष्टिमें समर्थ नालन्दाका यह तरुण शिल्पी अमोघ अभी भी हमारे मध्य है। आयुष्मान् अहिरथ, सभी चित्र और शिल्प-शैलियोंमें प्रवीण शिल्पी यहाँ हैं। तुम्हें उनके कलाके दानमें सन्देह क्यों हुआ?"

अहिरथने कहा, "भन्ते, आज आप सबकी कलासे जो दान मैं माँगूँगा, वह कहीं तुम्हारी आस्थाको ही न हिला दे।"

सहसा एक रक्तवर्ण तीखी नासिका नीली आँख और सुनहरी दाढ़ीवाले प्रौढ़ शिल्पीने खड़े होकर कहा, "भद्र अहिरथ, मैं हूँ तक्षशिलाका सुवर्णगन्ध शिल्पी। उदीचिसे आया हूँ। जानते ही हो कितनी सुदूर है। वितस्ता, असिक्नी, विपाशा, परुष्णी, शुतुद्रि नदियोंको पार कर, गंगा-यमुनाके क्षेत्रसे होता हुआ

सांकाश्यकी पवित्र भूमिके दर्शन कर, वत्स, अवन्ती विन्ध्य क्षेत्रोंको पदाति ही पार कर सतपुराकी दुर्गम श्रेणियों और ताप्तीकी उग्र धाराको पीछे छोड़ अश्मक क्षेत्रसे होता हुआ यहाँ आया हूँ। पूछो तो, मैंने यह सब उद्यम क्यों किया भद्रे? उधर समीप ही कुभापारसे भी शिल्पी संघका आमन्त्रण था। पर मैंने उसे नहीं स्वीकारा। बस एक ही लोभ था। शिल्पी अहिरथके निर्देशनमें भगवान्की जीवन-गाथाको अंकित करनेका। मैं गान्धार शैलीमें प्रवीण हूँ। अन्य शैलियोंमें भी मेरी गति अच्छी है। भद्र, स्वयं जानते हैं। आपके आदेशोंको मेरा सहयोग प्राप्त है।"

फिर तो जैसे उद्गारोंकी बाढ़-सी आ गयी। जलाशयमें समुद्रका ज्वार उमड़ आया। शिल्पी समुदायसे स्वर उठने लगे :

"भद्र, मैं हूँ अमरावतीका श्रीरंग। मेरी सेवाएँ आपके अधीन हैं।"

"भद्र, मैं हूँ माहिष्मतीका रंगधर्मा शिव। मैंने उज्जयिनीमें राजाज्ञासे कवि कालिदासके मेघदूतको भित्तिचित्रोंका रूप दिया है। आप आज्ञा करें, मैं अनुगत हूँ।"

"भद्र, मैं हूँ कौशाम्बीका अपलक। जन्मसे श्रेष्ठि-पुत्र हूँ। पर कर्मसे शिल्पी। शिल्प ही मेरी साधना है। मैं आपके अधीन हूँ।"

"मैं अम्बुष्ठ उत्तरमें सरस्वती तीरसे आया हूँ। भद्र, कला क्षेत्रमें सारस्वत नामसे जाना जाता हूँ। मुझे मगधमें राज्याश्रय प्राप्त रहा है, आप आज्ञा करें?"

"मैं भरहुतका शिल्पी हूँ, भारहुति अलीक। स्तूप-निर्माण कलाका मेरा विशेष अध्ययन है। भगवान्की नख-केश धातुओं-पर बने अनेक स्तूपोंमें मेरा सहयोग रहा है। मेरी दृष्टिमें ये

बृहदाकार स्तूप मात्र पृथुल निर्माणवाले नहीं, अपितु अलौकिक प्रतीकोंवाले हैं। इन स्तूपोंका भार मेरु-तुल्य है। इनके गर्भमें स्थापित भगवान्‌की धातुएँ त्रिरत्नकी परम्पराको अमरत्व प्रदान करनेवाली हैं। इनपर बनी हर्मिकाएँ अर्हत् पदका बोध कराती हैं। इन हर्मिकाओंसे उठते दण्ड ऊर्ध्वमुखी साधनाके प्रतीक हैं, जिनपर शोभित छत्र बुद्धकी करुणाके तुल्य हैं। भद्र, इसीसे जान लो कि मेरी सम्पूर्ण कला धर्मको किस दृढ़ताके साथ समर्पित है। इन स्तूपोंके चारों ओर बनी प्राकार जैसे मेरी प्रत्यक्ष आस्था ही है। आपका आदेश हो भद्र !"

अहिरथकी आँखोंमें विश्वासकी शिखा आलोकी। पर दूसरे ही क्षण बुझती-सी जान पड़ी। वह सन्दिग्ध स्वरमें कह रहा था, "पर तुम तो स्थपति हो भद्र। क्या रंगोंकी कलाका भी अभ्यास किया ?"

भारहुति अलीक चुप ही रहा। उसके मौनने बता दिया कि वहाँ वह असमर्थ है। अहिरथ जैसे अन्तरिक्षवर्ती अर्हतोंको सम्बोधित करता हुआ कहने लगा, "तो मेरा स्वप्न कैसे पूरा होगा ? कैसे पूरा होगा करुणामय !"

शिल्पी समुदाय चकित-सा एक-दूसरेको देखने लगा, तभी उस समुदायमें-से अकेला स्त्री-स्वर उठा, "शिल्पी संघ आश्वस्त हो। भद्र अहिरथ आश्वस्त हों। मैं हूँ मधुराकी सुनन्दा। मेरी जन्मभूमिको कोई-कोई मथुरा भी कहते हैं। मैं उत्तरापथके यमुना-क्षेत्रसे आयी हूँ। रंग और रेखाएँ मेरे धर्मके साधन हैं। भद्र, भारहुति अलीकके स्तूपोंकी प्रतीकता मैं अपनी रंग-भरी रेखाओंको देनेकी क्षमता रखती हूँ।"

सुनन्दा सबसे पीछे बैठी थी। सभी शिल्पियोंकी ग्रीवाएँ

इसी दिशामें मुड़ गयीं और उसकी तरुणाईसे पुष्ट और रूपसे सुघर आकृतिको देखकर उनकी आँखें अपने-अपने मनके अनुरूप आशय लगाने लगीं।

एक वाचाल शिल्पीने कहा, "कोई सन्देह नहीं, मधुरा-सा शिल्प मधुर है। आकृतिकी सुघरता निर्विवाद है।"

इसपर कुछ शिल्पी मन-ही-मन हँसे। अहिरथ पूर्ववत् उद्वेलित पर मौन ही था। सुनन्दा अविचलित ही रही। उसका अनलंकृत रूप आत्म-विश्वासकी ज्योतिमें वैसे ही कान्ति-मय रहा, जैसे काँटोंसे बिंधा ओससे भारी सुबहका गुलाब सूरजकी पहली किरणके आलिंगनमें। सुनन्दा कह रही थी, "शिल्पी संघ सुने। भद्र अहिरथ सुनें, स्तूपके शिल्प-की अलौकिकता अपने सम्पूर्ण रूपमें एक नारीकी सुघर आकृतिमें विद्यमान है। एक स्त्रीका कटिसे अधोभाग स्तूपके उस अंशकी तरह है जिसे भारहुति अलीकने मेरुकी संज्ञा दी है। उसकी नाभि और ग्रीवाका मध्यदेश हर्मिकाके तुल्य उत्थान भूमि है, अर्हतोंकी साधनाके योग्य। और उस हर्मिकासे दण्ड-तुल्य आरोहण करती हुई ग्रीवापर सुन्दर केशोंसे युक्त सिर भगवान्‌की करुणाके छत्रके तुल्य है। मानवी आकृतिमें इस प्रतीकका आरोपण हो सकता है भद्र! केवल उसके बोधका संस्कार और उसे अभिव्यक्त करनेकी क्षमता चाहिए। शिल्पी संघ मेरे आत्मविश्वासको मेरा अहंकार न समझे। मैं विनत हूँ। भद्र अहिरथके आदेशोंकी अनुगता हूँ।"

अहिरथका मुख निरभ्र आकाशकी नीली शान्तिसे भर उठा। नेत्रोंमें सिद्धिका करुणामय उल्लास तरल होने लगा। उसने उत्साह-भरे स्वरमें कहा, "साधु, आयुष्मती सुनन्दा

साधु ! शिल्पी संघ अब मेरी सुने । देवी सुनन्दाकी वाणीसे यह अहिरथ आश्वस्त हुआ । मेरी कल्पनाके उस चित्रको देवी सुनन्दा ही जन्म देंगी । आयुष्मति, मेरे साथ उस गुहामें चलें । मैं वहीं चलकर तुम्हें अपनी योजना बताऊँगा ।"

विहारमें जलती हुई एक मशालको अहिरथने अपने हाथमें ले लिया और तेजीसे शिल्पी-समुदायमें-से होता हुआ एक-दूसरी गुहाकी ओर चला । सुनन्दा उसके पीछे थी । कुछ कुतूहली शिल्पी भी साथ हो लिये थे । अहिरथने उस गुहामें प्रवेश किया । शेष सबने भी । गुहाकी एक भित्तिके समीप पहुँचकर उसने कहा, "आयुष्मति, यही वह स्थल है, जहाँ मैंने इस सूनी भित्ति-पर उस सूनी रातके अँधियारेमें एक आलोक-चित्र देखा था । यहाँ इस भित्तिपर मैंने देखा, देवी यशोधरा थीं । आयुष्मान् राहुल था । और स्वयं भगवान् थे । देवी यशोधरा भगवान्को तनय राहुलकी भिक्षा दे रही थीं । भगवान्की अनुपम करुणा-सी साक्षात् देवी यशोधरा, धर्म-तड़ागमें विकचित साधनाके कमल-सा राहुल और समस्त विश्वके प्रति मैत्रीभावना बरसानेवाले स्वयं भगवान् ! आयुष्मति, मैंने सोचा था कि मैं स्वयं उस दृश्यका चित्रालेखन करूँगा, पर जब-जब मैंने वैसा प्रयत्न करने-की चेष्टा की, मेरे हाथ काँप गये । यह जानते हुए भी कि आयु-ष्मान् राहुल अर्हत् पदको प्राप्त कर चुके, जाने क्यों मैं उन्हें उस स्थितिमें कल्पित कर मोहसे भर उठता हूँ । मैंने त्रिपिटकोंको अनेक बार पढ़ा है साध्वी, पर इस प्रसंगको पढ़कर सदैव आँसू ही बहाये । जो आँसू भगवान्के महाभिनिष्क्रमणपर पथरा गये थे, वे इस प्रसंगमें जलके स्रोत बन उठे । आयुष्मति, तो अब तुम ही मेरे इस अधूरे स्वप्नको पूरा करोगी । बोलो करोगी न ?"

सुनन्दाने अनुगृहीत भावमें कहा, "अवश्य करूँगी आचार्य, पर इससे पूर्व कि मैं यह चित्रालेखन प्रारम्भ करूँ, मेरा एक अनुरोध है।"

अहिरथने कहा, "निश्चिन्त होकर कहें देवि !"

सुनन्दा सविनय बोली, "मुझे राहुलकी सम्पूर्ण कथा सुनायें आचार्य !" उनके जन्मकी, उनके शैशवकी, उनकी प्रव्रज्याकी, उनके अर्हत् होनेकी। इसके अतिरिक्त वह भी आचार्य, जिसका आख्यान पिटकोंने नहीं किया, जो पुराणोंमें भी नहीं। पर जिसे शायद आप जानते हैं।"

अहिरथने एक भित्तिका सहारा ले लिया था। उसके हाथकी मशाल एक अन्य शिल्पीने थाम ली। सुनन्दा उसके और भी निकट चली आयी थी। अहिरथने गहरी साँस लेकर कहा था, "अवश्य सुनाऊँगा आयुष्मति, समूची कथा सुनाऊँगा आयुष्मति ! मैं स्वयं उन प्रकरणोंके बारेमें जो कुछ सोचता रहा हूँ वह भी सुनाऊँगा। पर सुनो, कहीं मेरी किसी बातमें धर्मके प्रति विद्रोहकी गन्ध मिले तो उसे क्षमा करना। देवि, बस अब तुम जाओ, भद्र आप सब भी जायें। आजकी रात मैं इसी भित्तिके पास एकान्त विहार करूँगा। उस कथाको सुनानेकी शक्ति भगवान्से माँगूँगा। आयुष्मति, अब जाओ और प्रभातकी प्रतीक्षा करो।"

"देवी गोपाने पुत्र-रत्नको जन्म दिया, उल्लास-भरी स्वर लहरियोंमें जाने कितने शाक्य कुमारों, शाक्य कुमारियों, शाक्य पुरुषों और शाक्य सुन्दरियोंके मुखसे यह वाक्य बार-बार निकला...", अगले दिन प्रभातमें चैत्य गुहाओंके चरणोंमें बहनेवाली बाघ नदीके तटपर जब शिल्पीसंघ एकत्र हुआ तो

आचार्य अहिरथने राहुल-कथाका आरम्भ उक्त वाक्योंसे किया। यह कहते हुए स्वयं उनके स्वरमें कुछ ऐसा उल्लास था जैसे वे स्वयं उस घटनाके साक्षात् दर्शक रहे हों। शिल्पी समुदाय भी अपने कुतूहलको जाग्रत किये उस कथाको सुन रहा था। सुनन्दा तो, लगता था, कानोंसे ही नहीं आँखोंसे भी उस कथाको सुन रही थी। उसकी आँखें अहिरथकी हर भाव-भंगिमाका दर्पण बनी हुई थीं।

अहिरथने अपनी कथा आगे बढ़ायी—"राजा शुद्धोदनके परिवारमें पुत्रका जन्म शाक्योंके लिए पर्व-सा बन गया था। आयुधधारी शाक्य राजपथोंपर कुछ ऐसे झूमते-इठलाते घूमते मानो मगध विजय करके आये हों। यह प्रसन्नता एक व्यक्तिकी नहीं समूचे शाक्यसंघकी थी। प्रमोदशालाएँ विनोदी शाक्योंकी भीड़को सँभाले न पा रही थीं। द्यूतशालाएँ राजकरसे मुक्त कर दी गयी थीं। द्यूतमें अपने बहुमूल्य रत्नोंको हार-हारकर भी शाक्य पुरुष उदास न हो रहे थे। उस हारमें भी उन्हें जीत-जैसा सुख मिल रहा था। अट्ठपद, आकास, परिहारपथ, सन्तिक, खलिका, घटिका सलाकहत्थ, पंगचीर, वैंकक, मोक्खचित्र, चिगुलिक, रथक, अक्खरिका, मनेसिका, और भी जाने कैसे-कैसे द्यूत थे, जो सभी वयके शाक्योंके विनोदका साधन बने थे। कुछ हठीले शाक्य युवा तो आयुध-कौशल प्रदर्शन करनेमें क्षत-विक्षत होकर भी मुसकरा रहे थे। उधर रसिक सम्प्रदायोंमें नृत्य-संगीतके अहर्निश आयोजन चल रहे थे। कोई गणिका रूपमालाका प्रशंसक उसके नृत्यसे प्रमुदित होकर कहता, वैशालोकी अम्बपालीकी कीर्ति तो बढ़ी है पर हमारी रूपमालाके रूप और नृत्य-कौशलको वह भी देखे तो नगरवधूके अपने गौर-

वको ही भूल जाये। इसपर उपस्थित रसिक समाज 'हाँ ऐसा ही है' कहकर बार-बार अनुमोदन करता। कुछ युवकोंने अपनी कटिमें झूलते कोषोंसे सुवर्ण, धरण और कार्षापणकी मूँठें फेंकनी शुरू कर दीं। सोने, चाँदी और ताँबेकी उन मुद्राओंसे नृत्य-भूमि नृत्य योग्य नहीं रही। किन्तु फिर भी रूपमालाकी स्निग्ध, त्वरित, तालबद्ध नृत्य गतिमें कोई अन्तर नहीं आया। कहीं राजपथपर ही कुछ मनचले मुष्टियुद्धमें अपने शरीर-बलका पराक्रम दिखा रहे थे। उनके प्रशंसक दर्शक कहते, 'असियुद्ध तो शक्तिहीनोंके लिए है। जिनके देह वज्रके हैं और जो जंगली महिषके मुड़े हुए सींगोंको सीधा करनेकी क्षमता रखते हैं, ऐसे वीर तो मुष्टि-पराक्रममें ही विश्वास रखते हैं। जिन मुष्टियोंके प्रहारको सिंह न सह पाये उनके प्रहारोंको इन वीरोंके कुलिश वक्ष ही सह सकते हैं।'

यह तो कपिलवस्तु नगरकी दशा थी। राजभवनकी तो बात ही न पूछो। राजा शुद्धोदन तो हर्षसे बावला हो रहा था। कुमार सिद्धार्थके प्रति उनके मनका डर कभी मिटा ही न था। उन्हें वैराग्य पक्षसे विमुख रखनेके लिए उन्होंने क्या नहीं किया था। शाक्य सुन्दरियाँ अपने नृत्य संगीत वीणा वादनसे उन्हें निरन्तर रमाये रखनेका प्रयत्न करतीं। रूपसी तरुणियाँ जल-क्रीड़ा, नौका-विहार, उद्यान-रमणमें सदैव तत्पर रहकर कुमार सिद्धार्थको भवकी आसक्तिमें ही बाँधे रहना चाहती थीं। पर शुद्धोधन तो इन प्रयत्नोंसे भी आश्वस्त न था। तब उसने भगवान्का विवाह अद्वितीय सुन्दरी देवी गोपासे किया था। देवी गोपाके रूपका यश सीमाएँ न जानता था। इसीसे उन्हें जन यशोधराके नामसे स्मरण करता था। अनिन्द्य सुन्दरी गोपा

जिसकी गतिसे हंस लज्जित होते, जिसके स्वरके समक्ष वंशी कर्कश लगती और जिसका शरद्-चाँदनीकी शीतलतासे भरा रूप नेत्रोंपर वशीकरण कर डालता। वैसी पुत्रवधूको पाकर राजा शुद्धोदन अवश्य ही आश्वस्त हुआ था। पर विवाहके उपरान्त भी पुत्रकी जो प्रवृत्तियाँ उसके सामने आयी थीं उससे उसे सन्देह ही था कि यह चक्रवर्तियोंके सुलक्षणोंसे युक्त कुमार दिशाओंके ऐश्वर्योंका भोक्ता और पृथ्वीका पालक चक्रवर्ती बनेगा या वीतराग संन्यासी। पर जब देवी गोपाने पुत्रको जन्म दिया तो उनके टूटते विश्वासको फिरसे बल मिला और उन्हें लगा, पत्नीके रूपका शिथिल पड़ता बन्धन अब पुत्र-प्रेमके मोहका बल पाकर अवश्य ही सिद्धार्थको चक्रवर्तियोंके सिंहासनोंकी दिशा दिखायेगा।

उधर राजागारमें प्रजापती गौतमी भी बहुत दूर छूटे यौवनकी स्फूर्तिसे भर उठी थी। उसने तो अपनी आभूषण पेटिकाओंको रिक्त करना शुरू कर दिया। जो परिचारिका यह सुखद संवाद लेकर आयी थी उसका मुख उसने सचमुच ही मोतियोंसे भर दिया था। उसके बाद जो आभूषण हाथमें आया वह उसी दासी परिचारिकाके अंगोंपर चला गया जो उस क्षण सामने पड़ी।

राहुलका जन्म शुद्धोदनके परिवारके लिए एक पुत्रके नहीं, सौ-सौ पुत्रोंके जन्मका सुख दे रहा था। अलौकिक गुणोंसे युक्त सिद्धार्थको भवसे बाँधे रखनेकी इच्छा ही इस अपार सुखके मूलमें थी।

और देवी गोपा। उसका सुख मैं नहीं बता पाऊँगा मित्रो। आयुष्मती सुनन्दामें कल्पनाकी शक्ति है, वे स्वयं कल्पना कर लें

कि तब देवी गोपाने किस कृतार्थताका अनुभव किया होगा। स्त्री-का सुहाग उसका सबसे बड़ा ऐश्वर्य है। पुत्र रूपमें राहुल जैसे उस ऐश्वर्यका विश्वास बनकर आया था। वह शिथिल अंग होनेपर भी मनसे दूर-दूर उड़ी जा रही थी। वह बार-बार यही कल्पना करती कि पुत्र-जन्मके संवादने उसके पति कुमार सिद्धार्थके मनमें कैसी-कैसी आकांक्षाएँ जगा दी होंगी और जब मैं स्नान कर पहली बार इस कक्षके बाहर उनसे मिलूँगी तो सुवर्ण-से पीले मेरे मुखको देखकर वे अवश्य कहेंगे, 'इस दुष्टने तुम्हें कितना कृश कर दिया।' पर इस आरोपमें भी वे पुत्रके प्रति कितने प्यारसे भरे होंगे। कभी मुझे देखते होंगे, कभी इस दुष्ट-को। और मैं अपनी उस हारपर कितनी विजयिनी हो उठूँगी, जब वे मुझे चुम्बन न देकर मेरे प्यारको छीननेवाले इस चोरके माथेपर अपने होठ रख देंगे।"

यहाँतक कथा कहकर अहिरथने सुनन्दाको देखा था। तब सुनन्दाकी आँखें निर्मल जलमें तैरती मछली-सी हो रही थीं। उसके इस भावसे अहिरथ अपने कल्पना-चित्रके निर्माणके प्रति आश्वस्त हुआ। उसने उस समय कथा वहीं छोड़ देनी चाही। कहा, "अब आगेकी कथा दिवसके तीसरे प्रहर सुनाऊँगा। अब मुझे आप लोग विरामकी आज्ञा दें।"

शेष शिल्पी चुप ही रहे, पर अपने स्थानसे हिलने तककी कोई चेष्टा न करते हुए उन्होंने कथाको और आगे सुननेकी मूक इच्छा ही प्रकट की। किन्तु सुनन्दा आग्रह कर बैठी, "नहीं आचार्य, विराम इतनी शीघ्र नहीं। हमें यह भी बतायें कि तब स्वयं भगवान्को कैसा लगा। उनकी क्या प्रतिक्रिया हुई ?"

अहिरथ मुसकराया और बोला, "मैं तुमसे इसी आग्रहकी

आशा करता था। तो सुनो देवि, अपने भगवान्‌की लीला भी सुनो। परिचारकने तत्काल कुमार सिद्धार्थको जाकर सूचना दी, 'कुमार, शुभ हुआ। पुत्र हुआ। उत्सवका आदेश हो। दास पुरस्कृत हों।'

कुमार सिद्धार्थ स्थिर भावसे बैठे थे। उस समाचारको सुनकर उनके देहमें कुछ ऐसे कम्पन हुआ जैसे हिमालयके देहमें कँपकँपी पैदा हो गयी हो। क्षण-भर वे चुप ही रहे। अबूझ आँखों परिचारकको देखते रहे। वह कुमारके इस भावको देखकर सहम-सा उठा। फिर भी पुरस्कारकी आशासे रुका रहा। उस कठिन मौनके बाद सिद्धार्थने कहा था, 'पुत्र हुआ, राहुल हुआ। बन्धन हुआ।'

परिचारक फिर वहाँ न रुका। कुमारकी वह बात प्रजापती गौतमीके अतिरिक्त किसी औरसे कह भी न सका। समस्त शाक्य-कुलोंमें राहुलके जन्मपर एक ही व्यक्ति निरानन्द था और वह था कुमार सिद्धार्थ स्वयं।....

....और उस दिनके बाद आनेवाली रात्रि सबसे अद्भुत और असाधारण थी। राहुल-जन्मके आनन्दोंसे भरपूर उस दिवसका सुख उसके चौथे प्रहरपर खड़ी उस रातने लील लिया था। उसी रात कुमार सिद्धार्थने महाभिनिष्क्रमण किया। नगर और राजागार, जन और राजा भी अतिशय आमोदकी थकनसे चूर गहरी नींदकी गोदमें चले गये थे। पर यदि नींद किसीको न आ रही थी तो स्वयं कुमार सिद्धार्थको। देवी गोपा उन्हें मनका सुवर्ण-बन्धन लग रही थीं, तो कुमार राहुल बुद्धिका राहु-बन्धन। लोककी अनित्यताने उनके मनमें भवके प्रति जो निर्ममता उपजायी थी उसमें स्नेहकी क्षीण वर्तिकाके रूपमें देवी गोपा

ही तो आलोकित थी, जिसे और भी चैतन्य करने राहुल आ गया था। कुमार सिद्धार्थ इन बढ़ते हुए बन्धनोंसे अकुला उठे थे। उन्होंने बेचैनीसे भरकर अपनी सेज छोड़ दी। कक्षमें रजत दीपाधारोंपर सुगन्धित तैलके दीप जल रहे थे। चारों ओर भूमिपर बिछे आस्तरणोंपर सुन्दरी तरुणी दासियाँ, गायिकाएँ, नर्तकियाँ अस्त-व्यस्त परिधानोंमें बेसुध पड़ी थीं। उनके रूपका तीखापन भी जैसे उनकी बन्द आँखोंमें ही बन्द हो गया था। असावधानीसे अनावृत अंग सिद्धार्थके मनमें जुगुप्सा पैदा कर रहे थे। उस समय उनकी स्थिति शैवालसे घिरे कमल-तालमें उगे एकाकी कमल-सी थी। कुमारने आकाशको सम्बोधित करते हुए कहा था, ये रूपके बन्धन कितने घृणित हैं। ये मायाके बन्धन कितने मिथ्या हैं। कल ये तरुणियाँ जब वृद्धा हो जायेंगी, तब इनका रूप कहाँ होगा, तब क्या वह दर्पण भी जिसमें ये नित्य अपनी तरुणाई निहारती रही हैं, यह विश्वास दिला सकेगा कि कभी वे सुन्दरी थीं, युवा थीं। इस अचिर सुख, अचिर रूप, अचिर यौवन और अचिर रसमें ऐसा कौन-सा आकर्षण है जो मनुष्यकी बुद्धि निरन्तर सोयी रहती है।

एक बार सिद्धार्थके मनमें आया कि उन सुन्दरियोंको जगाकर उनका उद्बोधन करें और बतायें कि इस अचिर सुखके पीछे दौड़ती रहोगी तो बराबर गर्भका रौरव भोगोगी। बार-बार कामतृषामें प्रमत्त रहोगी। बार-बार कालको अपने रूप यौवनका हविष्य देकर विगलित अंगोंवाला जरासे जर्जर जीवन जियोगी। उठो, और उस जीवनके साधनमें लगो जो समस्त अचिरताओंसे अतीत है। जो एकमात्र सत्य है।

पर यह सत्य स्वयं सिद्धार्थके मनमें तर्क-वितर्कका जाल

बुनता रहा। बस वे चुप ही रहे। दूसरे क्षण वहाँ रुके भी नहीं। अपने चारों ओर शृंखला-तुल्य पड़ीं उन सुन्दरियोंके अंगों-वस्त्रों-को सावधानीसे पैरोंके नीचे आनेसे बचाते हुए कक्षसे बाहर चले आये।

कक्षसे बाहर आते ही उन्होंने देखा—वैशाखी पूर्णिमाका सोलह कलाओंवाला चन्द्र अमृत घट-सा नीले अम्बरपर सन्तरण कर रहा था, जिससे विकीर्ण होती हुई रजत धवल किरणें पृथ्वीका अभिषेक कर रही थीं। उस चन्द्रिका-स्नात एकान्त शान्त रात्रिमें कुछ दिव्य-सा था। कुमार अबतक उस सुधापिण्डको देखते रहे। कितनी ही देर तक वे अपना भी अस्तित्व भूले रहे। उस शीतल रात्रिमें रजनीगन्धाकी ऊष्मा-भरी गन्ध मनमें सुरंग प्रवृत्तियाँ जगानेमें समर्थ थी। केतकी, मन्दार, कुन्द, मौलश्रीकी महक गन्धका बहुरंगी ताना-बाना बुन रही थीं। उन सबमें सुवर्ण-चम्पाकी तीखी गन्ध स्वर्ण-तन्तुके काम-सी अलग ही थी। किन्तु सिद्धार्थ इन सब स्थूल अनुभूतियोंसे परे जैसे चन्द्रमाके दर्पणमें अपने ही मनकी प्रवृत्तियोंके प्रतिबिम्बोंका अध्ययन कर रहे थे। तभी उन्हें लगा कि नीले नभका वह शीतल चन्द्रिका-विस्तार दुग्ध धवल शय्या-सा है जिसपर शिथिल-सी गोपा पड़ी है। वक्षके कोटरमें छिपा नवजात श्वेत शुक-सा केवल अपनी चोंचसे ही जैसे पहचानमें आ रहा है। कुमारने उद्यानके दक्षिण-द्वारसे बाहर निकल जाना चाहा। पर द्विधा मनकी आज्ञा देहने न मानी और वे हठात् गोपाकी ओर मुड़ चले।

उतने संकल्प-विकल्पके साथ कदाचित् किसी पिताने अपने प्रथम पुत्रके प्रथम दर्शनके लिए प्रयाण न किया होगा। कदा-

चित् उस पिताने भी नहीं जो दीर्घकालसे अपनी प्रिया पत्नीसे वियुक्त रहा हो। पर सिद्धार्थका द्वन्द्व कुछ अभूतपूर्व भीषणतामें असह्य था। कुमार द्वारपर आये। प्रहरी ऊँघ रहे थे। धीरेसे कपाट खोल कक्षमें प्रवेश किया : शय्यापर गोपा वक्षमें नवजातको सटाये। चारों ओर सुध-बुध भूल सोयी परिचारिकाएँ। चन्दनदीपका मृदुल आलोक, जिसके प्रयत्नोंसे अन्धकारके आवरण झीने पड़कर पारदर्शी-से हो चले थे। उसी पारदर्शितामें प्रभात नक्षत्र-सा दीप्तिमान गोपाका ऐन्द्रजालिक रूप। कुमारपर जैसे क्षण-भरको वशीकरण हुआ। वेगसे शय्या तक पहुँचे। सचमुच ही श्वेत बाल हंस-सा राहुल, गरिमा-भरी हंसिनी-सी गोपा। सिद्धार्थके मनमें कदाचित् यह भी आया कि स्वयं हिमालयके सुवर्ण-चंचुवाले हंस होते और अपनी प्रिया भार्या तथा पुत्रको अपनी पाँखोंसे ढाँपकर सुरक्षा देते।"

आचार्य अहिरथ कहते कहते कुछ ऐसे विभोर हो उठे थे, जैसे वह सब कुछ अभी भी उनके सामने ही कहीं व्यापारित हो रहा था, जिसकी साक्षी उनकी अपनी दृष्टि थी। शिल्पी-समुदायकी उपस्थिति भूल उद्ग्रीव सुनन्दाको ही सुनाते-से बोले, "आयुष्मति, तुम जिज्ञासा करोगी कि मैंने सुगतके मनकी बात, उनका अन्तर्द्वन्द्व कैसे जान लिया? कैसे जाना सुनन्दे, यह तो मैं भी नहीं जानता, पर नाना अनुभूतियोंका भोगी मेरा यह मन आज कुछ वैसा ही अनुभव कर रहा है। पता नहीं यह सब मेरे ही संस्कार हैं या साहित्य, पुराण, धर्मशास्त्रमें जो पढ़ा उसकी प्रतिध्वनियाँ।"

फिर क्षण-भर रुककर अहिरथने कहा, वैसा ही हुआ था आयुष्मति। मेरे साक्ष्यसे मान लो कि वैसा ही हुआ था।

सिद्धार्थका मन अपनी पुत्रवाली भार्याके प्रति स्नेहके आग्रहसे भरता जा रहा था। पर दूसरे ही क्षण उन्हें लगा, जैसे मार स्वयं उनकी पत्नी और पुत्रके आश्रयमें बैठकर उनके मनको भवके मोहमें बाँधने लगा है। पुत्रको चुम्बन-भरा आशीर्वाद देनेके लिए झुकते-झुकते वे पीछे हट गये। गोपाके काले केशोंने पाश बनकर उन्हें बाँधना चाहा, पर उनकी ओर बढ़ता हुआ उनका दाहिना हाथ भी ऐसे सहम उठा, जैसे अन्धकारमें अपनी ही मणिके प्रकाशमें दीप्त फणिको देख लिया हो। बस दूसरे ही क्षण सिद्धार्थ प्रपात वेगसे गोपाके भवनसे बाहर हो चुके थे। बाहर आकर उन्होंने ऊँघते प्रहरीको चैतन्य किया और आज्ञा दी कि छन्दकको जाकर कहे कि कन्थक अश्वको लेकर तत्काल उपस्थित हो।

सुगतने महाभिनिष्क्रमणका निश्चय कर लिया था। प्रहरी-से इस असमयकी आज्ञाके विषयमें कुछ पूछते भी न बना। छन्दक भी आया। कन्थक भी साथमें था। सिद्धार्थने उसपर आरोहण किया। नगर सीमाकी ओर बढ़े। छन्दक अश्वकी पूँछ पकड़कर तेजीसे दौड़ता रहा। स्वामीका यह बावलापन उसकी समझमें ही नहीं आया। ऐसी रात्रिमें जिसका सबसे मनोरम सुख सुन्दरियोंके साथ रमण करते हुए सोना हो, यों अश्वकी पीठपर तूष्णींभावसे सवार होकर निकल चलना भला कहाँकी समझदारी ! पर उसके मनका कुतूहल मनकी कारामें ही बन्दी रहा। कन्थककी पूँछ पकड़े-पकड़े वह स्वामीका अनु-धावन ही करता रहा।"

सुनन्दाने आतुर जिज्ञासा की : "सिद्धार्थ गोपासे दो बातें किये बिना ही चले गये ? पुत्रको आशीर्वाद दिये बिना ही

चले गये ?"

अहिरथने रुँधते गलेको साफ़ करके सुनन्दाके प्रश्नोंको निरुत्तर रहने देकर ही कथाका सूत्र बढ़ाया, "भगवान्की आयु तब केवल उनतीस वर्ष थी। उसी भोगोंके उपयुक्त आयुमें ऐसा असाधारण निश्चय कदाचित् केवल वे ही कर सकते थे। उन्होंने इसी प्रकार शाक्य जनपदको पार किया। कोलिय और मल्ल जनपदोंको भी पीछे छोड़ दिया। अनोमा नदी मार्गमें पड़ी। उसकी बाधाको भी स्वीकार नहीं किया। सूर्योदय होते-न-होते मैनेयोंके नगर अनुमैनेयमें पहुँच गये। वहाँ एकान्तमें वे अश्वसे उतरे। वल्गा छन्दकको दी। अपने आभूषण उतारे। उनसे छन्दककी स्वामि-सेवाको पुरस्कृत किया। फिर खड्ग हाथमें लिया और उससे अपने जीवनकी अन्तिम हिंसाके रूपमें अपने भौंरों-से काले घुँघराले केशोंको काटकर जैसे राजमस्तकपर डोलनेवाले चँवरोंको ही भू-समाधि दे दी। राजसी वस्त्र भी उतार डाले और भिक्षु-वेषमें छन्दकसे बिदा ली। अश्रु-क्लिन्न छन्दक विरोधमें कुछ बोल तक न सका। स्वामिहीन अश्वकी वल्गा थामे लुटे वणिक्-सा लौट चला।"

अहिरथने तरल आँखोंसे देखा था कि जड़ रूप शिल्पी समुदायके बीच बैठी सुनन्दा रो रही थी। जैसे वह इस सब कुछपर प्रवंचित गोपा और अनजान राहुलकी दृष्टिसे ही सोच रही थी।

सन्ध्या समय बाघके तटपर शिल्पीसंघ फिर एकत्र हुआ। सुगतकी कथा प्रसिद्ध कथा थी। पर अहिरथके मुखसे सुननेमें कुछ नया ही रस आ रहा था। अहिरथ अनायास ही उस ऊँची शिलापर आ बैठा था। अन्य शिल्पी जहाँ कहीं आसन योग्य

भूमि पा सके थे, बैठ चुके थे, सुनन्दा अपने पूर्व स्थानपर ही थी। उत्सुक नेत्रोंसे अहिरथकी सौम्य भावुक आकृतिको देखती हुई चित्रगत-सी। अहिरथ अस्ताचलके नक्षत्र-सदृश, जो अस्त-वेलामें भी भव्य हो। सुनन्दा साँझकी सुनहली किरण-सी, जो अवसानके क्षणोंमें भी अभिसारमयी हो। शिल्पी-समुदाय उन छायाओं-सा जो वास्तविकतासे कोई साम्य न रखकर प्रकाश-केन्द्रसे अपनी स्थितिके अनुसार दीर्घ लघु संकीर्ण पृथुल हो, बिम्बानुबिम्बी हो उठा हो।

अहिरथने कथाका छूटा हुआ सूत्र आगे बढ़ाया, "कन्थक आगे-आगे, छन्दक पीछे-पीछे। कन्थककी आँखें कुछ ऐसी गली-गली-सी जैसे अश्रुक्षारने उन्हें खा लिया हो। छन्दक स्वयं यति गतिहीन छन्द-सा। उस चित्र-सा जिसके बहुरूपी भावोंका बोध करानेवाले रंग उड़ गये हों। और अब जो एक मात्र रंग या भाव शेष रह गया हो वह निश्शेष भावोंकी शवभूमि मात्र हो। मनको भानेवाले राग-रंगोंमें रात्रिको क्षीण करके विलम्बसे सोकर उठनेवाले नागर समाजने छन्दक कन्थककी वह दशा देखी तो अशुभकी आशंकाओंसे घबराकर अपने मनकी जिज्ञासाओंके समाधानका साहस भी न कर सके। पर स्वयं छन्दकके राजा शुद्धोदनके समीप पहुँचनेके पूर्व ही यह समाचार आशंकाओंके पंख पाकर राजागार तक पहुँच चुका था कि कुमार सिद्धार्थ कपिलवस्तुसे अभिनिष्क्रमण कर गये। फिर जब छन्दक कन्थकको द्वारपर छोड़कर राजा शुद्धोदनके समक्ष उपस्थित हुआ तो पुत्रके अभिनिष्क्रमणके समाचार-मात्रसे और भी वृद्ध लगनेवाले शुद्धोदनने बिंधे स्वरमें कहा था, "छन्दक, तुम तो अयोध्याके राजा दशरथके अमात्य सुमन्त्रसे भी आगे

बढ़ गये। सुमन्त्र तो राजाकी आज्ञासे युवराज रामको वन छोड़कर आया था। पर तुमने तो उसकी भी आवश्यकता नहीं समझी। और मैं दशरथकी समता भी नहीं कर सका। देखो, मैं इस रत्नासनपर बैठ उद्ग्रीव होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। आओ आयुष्मान्, मेरे समीप आकर बताओ कि मेरा सिद्धार्थ किस सिद्धिके लोभमें गणोंकी इस पवित्र भूमिको छोड़ गया। और तुम उसके ये आभूषण, ये राजसी वस्त्र मुझे कौन-सा सुख पहुँचानेके लिए लेते आये। मेरा पुत्ररत्न गया, तो क्या अब मैं इन पत्थरके रत्नोंसे अपना सन्तोष कर पाऊँगा, छन्दक, जाने किस जन्मके पापसे मैं राजा और तुम मेरे भृत्य हुए। छन्दक, अब तो मैं यही कामना करूँगा कि तुम अगले जन्ममें राजा शुद्धोदन बनकर छन्दककी दी हुई प्रवंचनाका सुख भोगनेका भाग्य पाओ।"

छन्दकके नेत्र ताल हो चले थे जिनकी सीमाएँ संचित जलके लिए कहीं संकीर्ण थीं। पर शुद्धोदन उस बिजली-सा जल रहा था जो अपने भीतरकी ज्वालाको असह्य पाकर तड़प उठती है और तड़पकर जिस प्रकाशके ओघकी वर्षा करती है उसे देख पानेके लिए किसीकी भी तो आँखें खुली नहीं रहतीं।

प्रजापतीने भी सुना। सुनकर गूँगी हो गयी। वह समझ ही नहीं पा रही थी कि किसका दुर्भाग्य बड़ा है—पुत्रहीन राजाका, कि पितृहीन नवजातका, कि पतिहीन गोपाका। वह यह भी नहीं सोच पा रही थी कि किसका सौभाग्य बड़ा था—देवोंको प्यारी हो चुकी सिद्धार्थकी माता मायाका, कि यह समाचार भी सुनकर जीवित सिद्धार्थकी माँ-सी प्रजाका।

गोपाने सुना। सुनकर निस्पन्द हो गयी। चेतना जम-सी

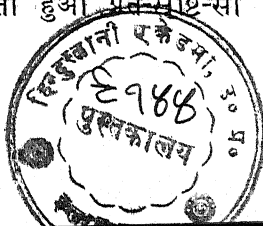
गयी। उसे समस्त परिवेश हिमगुहा-सा लगा। जहाँ ठिठुरन भी जम चली हो। उस परिवेशमें ऊष्माकी मोटी लौ-सा अंकमें सोया राहुल था। दीपकके अधरोंमें जलती शिखा-सा। कल ही मातृ-पदको पाकर उसने जो गौरवका अनुभव किया था वह सब जैसे भ्रम ही निकला। उसे पतिकी प्रीतिमें अपना तारुण्य, अपना रूप व्यर्थ ही लगता रहा। अंकमें राहुल आया तो सोचा कि उसके रूप-यौवनको सच्ची सार्थकता मिल गयी। पर उस गौरवकी अनुभूतिका पूरा-पूरा अनुभव भी न कर पायी थी कि महिमाका वह महल तृणशैल-सा उड़ गया। आज उसे पहली बार लगा कि उसका नारीत्व पत्नीत्व मातृत्व सभी कुछ तो एक अनमनीय पुरुषके द्वारा लांछित हुआ और अब उसी पुरुषका एक लघु रूप उसके भोगके उच्छिष्ट-सा उसके अपने अंकमें पड़ा है। सिद्धार्थने अपने अभिनिष्क्रमणके द्वारा उसके मनमें जो घृणा उपजायी थी वह वज्र बनकर फूल-से राहुलपर टूट ही पड़ती यदि गोपा अहल्या-सी अपने ही सौभाग्यके दर्शन-भरे शापसे पथरा न गयी होती।

और उधर लोगोंमें जितने मुख उतनी बातें हो रही थीं। कोई वृद्ध क्षत्रिय कह रहा था, "ब्राह्मणोंकी ईर्ष्याने इन क्षत्रियोंको कहींका नहीं छोड़ा। एक विश्वामित्र ही ब्रह्मर्षि नहीं होना चाहता था। आजके गणोंका हर क्षत्रिय शस्त्र त्याग कर शास्त्रकी अवज्ञा करके अलग ही अपना स्वर्ग बनानेमें लगा है। कुछ ही दिन हुए ज्ञातृकगणके वर्द्धमान महावीरने केवलिन् बन समस्त वेद-पुराणपर पानी फेर दिया, और अब यह सिद्धार्थ जाने क्या सोचकर राजभोगोंको लात मार वन चला गया।"

उस दिनकी कथा वहीं समाप्त हो गयी थी। शिल्पी अहिरथ

जैसे गोपाके दुःखकी अभिव्यक्तिमें असमर्थ हो गया था। सुनन्दा सुगतकी अनुगामिनी होनेपर भी खीजसे भर उठी थी। करुणामय बुद्धावतारकी करुणामें उसे सन्देह होने लगा था। श्रोताओंमें वही सबसे अधिक उत्सुक थी, और आज श्रोताओंमें वही सबसे प्रथम थी कथा-स्थलको छोड़नेमें। शिल्पी-समुदाय भी बिखर गया। हर कोई अपनी चर्यामें लग गया। किन्तु अहिरथ अपने शिलासनपर ही बैठा रहा। धीरे-धीरे साँझ हो गयी और जैसे यौवनके आभोगसे सौन्दर्य कामनामय हो उठता है, कुछ वैसे ही उसकी सुन्दरता सघन होती गयी। दोपहरमें जिस छिछली बावकी जलधाराका वर्ण तलके पत्थरोंसे चितकबरा-सा हो रहा था, वही सूरजकी किरणोंके तिरछा होते ही ऊँचे कगारकी परछाईंसे नीला हो चला था। पर साँझकी छाया पड़ी तो धारा साँवली हो चली थी। फिर ज्यों-ज्यों साँझ सघन होकर रात्रिकी अभ्यागता हुई त्यों-त्यों उसकी जलधारा रहस्यमयी होती गयी। अहिरथ तटके पत्थर-सा बाहरसे शान्त किन्तु भीतरसे आन्दोलित होता रहा।

साँझ जब पूरी तरह काली पड़ चुकी थी तो तारे उसे सँवारने चले आये थे। तारोंके कुतूहलने साँझको संकोचसे भर दिया। तभी मुक्त केशिनी श्यामा-सी सजीली रात जल थल नभमें सब कहीं छा गयी। दिनमानके प्रकाशमें जिन जड़ चेतन पदार्थोंकी इकाई अपने-अपने अहंकारको मूर्त्तित करती थी, अब वही रेखा-विहीन चित्र-से कुछ ऐसे तरल हो उठे थे कि इकाइयोंकी सन्धियाँ आपसमें उलझते-उलझते अदृश्य ही हो गयी थीं। पृष्ठभूमिके अन्तरसे सघन होता अन्धकार कहीं हलका गहरा, कहीं भारी गहरा होता हुआ प्रेत-सृष्टि-सी कर रहा था।


६१४४ पुस्तकालय

गुहाओंके मुक्त-द्वारोंके भीतर अन्धकारकी तहोंपर तहें जमी थीं। और जब हवाके बावले झोंके उनमें घुस जाते तो कदाचित् अन्धकारमें रास्ता भूल शोर मचाने लगते। जिन गुहाओंमें शिल्पियोंने मशालें जलाकर आलोक कर लिया था उनमें अन्धकार प्रकाश अपनी-अपनी शक्तिके अनुरूप क्षेत्र-स्वामी बने हुए थे। पर यह कहना कठिन था कि कहाँ किसकी सीमा समाप्त होकर दूसरेके अधीन जा रही थी। हाँ, जहाँ-जहाँ उनका प्रताप प्रबल था वहाँ-वहाँ अवश्य ही 'एक मात्र मैं ही हूँ दूसरा कोई नहीं'-जैसे संस्कार प्रबल थे।

फिर मशालें भी बुझ गयीं। गुहावासी समग्रतः अन्धकारको समर्पित हो गये। रात्रिने चेतना-लोकपर नींदका जादू जो चला दिया था। अब गुहाओंकी ओटमें अल्प सत्त्व-सा मात्र दो-चार कला शेष चन्द्र उग आया था, पर असंख्य तारोंकी सहायता पाकर भी अन्धकारको परास्त नहीं कर पा रहा था। सुगतके जीवनपर विचार करते हुए अहिरथके मनकी दशा भी ठीक ऐसी ही थी। उसी आस्थाके चन्द्रमाकी कलाएँ क्षीण हो चली थीं। शुभ संकल्पोंसे तारे शुभ मात्र थे। किन्तु प्रबल थी वह अनास्था जिसके मूलमें सुगतकी गोपाके प्रति उपेक्षा थी।

जब एक आसनपर बैठे-बैठे पथराया-सा शरीर भी नींदके भारको नहीं सँभाल सका तो अहिरथ धीरेसे उठकर अपनी गुहाकी ओर चल दिया। अन्धकारमें मार्ग ठीकसे नहीं दीखता और पाँव किसी मूलहीन पत्थरपर पड़कर डगमगा उठता तो तनका सन्तुलन मनसे भी अधिक बिगड़ जाता। जब अहिरथ ढलुए रास्तेके शीर्षपर पहुँच ही चुका था तो उसका पाँव एक बार फिर फिसला और कदाचित् वह स्वयंको सँभाल ही नहीं पाता

यदि सहसा किसी हाथने आगे बढ़कर सहारा न दे दिया होता।

पूरी तरह सँभलनेसे पूर्व ही अहिरथका प्रश्न हो चुका था, "कौन ?"

कर्कश प्रश्नके उत्तरमें सुकोमल स्वरका उत्तर था, "सुनन्दा आचार्य !"

"तुम अभीतक सोयी नहीं ?"

"मेरा भी यही प्रश्न है आचार्य !"

इसपर आचार्यने कहा था, "मेरे मनकी अनास्था जागकर मुझे सोने नहीं देती आयुष्मति !"

सुनन्दा जिज्ञासामयी होनेपर भी चुप ही रही। अहिरथने सुरक्षित भूमिपर खड़े होकर कहा था, "आयुष्मति, तुम तो जानती हो कि मेरे मनका यह समस्त आन्दोलन उस अप्रसूत मित्रकी ही भूमिका है। जबतक मैं अपने अभियोगको चित्रित न कर लूँगा, मुझे चैन न पड़ेगी। सुनन्दा, तुम्हीं बताओ कि सुगतने गोपाके साथ यह अन्याय क्यों किया ? अनेक जन्मोंसे बोधिसत्त्वके रूपमें भवका भोग करके भी उन्होंने गोपाकी वेदना क्यों नहीं समझी।"

सुनन्दाने तिक्तताके साथ कहा, "वे पुरुष थे आचार्य !"

आचार्यपर ठीक वैसी ही प्रतिक्रिया हुई जैसे कोमल पत्थर-पर तेज छेनीकी होती है। पर जैसे वही चोट पत्थरको भावाकृति देती है, वैसे ही इस चोटने उनके मनमें सुनन्दाकी एक नयी भावाकृति उभार दी। उस सघन रातमें एकदम समीप होनेपर भी वे सुनन्दाके मुखकी रेखाएँ नहीं देख पा रहे थे। पर यह जो भावाकृति इस एक चोटसे प्रत्यक्ष हुई उसकी प्रत्येक

ऋजुता-वक्रता जैसे अपनी ही सीसकी तरह सुबोध थी! अहिरथने कहा, "तुम्हारी आस्था भी चंचल हो उठी सुनन्दा !"

सुनन्दाने उत्तर दिया, "आचार्य, क्या मैंने असत्य कहा। जीव एक ही है। स्त्रीमें भी, पुरुषमें भी। पर पता नहीं क्यों पुरुष देह पाकर वह कठोरताकी कुरूपतासे भर उठता है। फिर चाहे वह किसी बोधिसत्त्वका पुरुष देह हो, या किसी अर्हत् या सम्यक् सम्बुद्धका। मेरा आक्रोश उस सत्त्वपर नहीं उसके देहपर है आचार्य !"

आचार्य और सुनन्दा जहाँ खड़े थे वह भूमि स्वच्छ और समतल थी। आचार्यने बैठते हुए कहा, "तुम तनिक बैठो तो आयुष्मति, आज मुझे अपने ही मनके सदृश एक अन्य जटिल मनका साक्षात्कार हो रहा है। मैं उसे और भी समीपसे जाननेको उत्सुक हूँ।

सुनन्दा बैठ गयी थी और साथ ही प्रश्न कर उठी थी, "मेरा एक प्रश्न है आचार्य। आप धर्मको अखण्ड, अविभाज्य, सार्वकालिक और सार्वभौमिक मानते हैं न ?"

अहिरथने गम्भीरताका किंचित् परिहार-सा करते हुए कहा था, "यह प्रश्न तो किसी स्थविरसे पूछतीं शुभे !"

सुनन्दाने फिर भी कहा, "मैं स्थविरके उत्तरकी कल्पना स्वयं कर सकती हूँ। पर इस क्षण मैं आपका उत्तर चाहती हूँ आचार्य !"

अहिरथका उत्तर था, "मेरी कल्पनाके अनुसार तो धर्म अविच्छिन्न प्रवाही है आयुष्मति। जैसे हिमालयसे निकली गंगा भूमि-स्थलका विचार न करके केवल अग्रसर ही होती

रहती है, और सागर-संगमके पूर्व नहीं रुकती, कुछ वैसी ही स्थिति इस जीवनमें धर्मकी है। हर क्षण हर स्थल इस धर्म-की गंगाका पर्व है, तीर्थ है। जीवको निर्वाण तीर्थपर पहुँचाकर ही जैसे यह उस महान् संगमपर ठहरती है। इसीसे मैं धर्मको कहूँगा कि वह अखण्ड है, अविभाज्य है, सार्वकालिक और सार्वभौमिक है।"

इसपर सुनन्दाने किंचित् उग्र स्वरमें कहा, "तो स्त्री इस धर्मकी गंगाका तीर्थ क्यों नहीं बनती? नारीके परिवेशमें इसकी धारा क्यों विच्छिन्न होने लगती है? उसे वासना मानकर धर्म क्यों संकुचित और भीरु हो उठता है? स्त्री यदि भवकी आसक्ति उपजाती है, तो पुरुष क्यों नहीं? आप स्वयं पुरुष हैं आचार्य, आप ही उत्तर दें। स्त्रीकी दृष्टिसे सोचूँ तो क्या सिद्धार्थ गोपाका बन्धन न थे। क्या स्वयं आचार्य अहिरथ किसी सुनन्दाका बन्धन नहीं बन सकते?"

अहिरथके मुखसे किंचित् भर्त्सनाके साथ निकला, "सुनन्दा!"

"विचलित हो गये आचार्य!" सुनन्दा कह रही थी, "मैंने तर्क-भर किया था।"

अहिरथने ठण्डी साँसके साथ कहा, "तर्ककी तीक्ष्णताका पूरा बोध मुझे आज हुआ। भगवान् स्वयं इतने संकुचित न थे। आखिर उन्होंने स्त्रियोंको भिक्षुणी बननेकी आज्ञा दी ही थी।"

सुनन्दा पूर्व उग्रताके साथ ही बोली, "और मैंने आप ही से सुना है आचार्य कि प्रजापती गौतमीको प्रव्रजित करते समय

आपके भगवानने यह भी कहा था कि अब संघ अनन्त आयु-वाला न हो सकेगा।"

"अहिरथने समाधानकी चेष्टा की, "जिस धर्मका आचरण इस भूलोकमें होता है देवि, उसके स्वरूपका निर्धारण भी इस लोककी ही प्रवृत्तियाँ करेंगी। धर्मका जो लौकिक स्वरूप है उसमें यह विषमता रहेगी ही।"

सुनन्दाने व्यंग्यकी क्षीण हँसीसे मिश्रित करके कहा था, "तो धर्म अविभाज्य रहा कहाँ। लोक और लोकोत्तरकी सीमाओंमें बँटकर ही रहा न ?"

इसपर आचार्यने शान्त स्वरमें कहा था, "कितने आश्चर्य-की बात है देवि कि कुछ ही क्षण पूर्व तक मेरी मनोदशा भी कुछ ऐसी ही थी, पर अब वह पूर्ण शान्त है। तापसे तापका शमन चरक मुनिके उस कथनकी तरह ही है न कि विष ही विष-की औषध है। आयुष्मति, तुम्हारे अन्तर्मनमें एक ज्वाला धधक रही है। मैं उसे जाग्रत् ही रखना चाहूँगा। वह ज्वाला बुझ गयी तो तुम मुझे मेरी कल्पनाका चित्र कभी न दे पाओगी। मुझे लगता है कि मुझे तुम्हारे रूपमें उपयुक्त माध्यम मिल ही गया।"

उस अन्धकारमें भी आचार्यकी दृष्टिसे अपनी दृष्टिको सयत्न बचाते हुए सुनन्दाने कहा था, आचार्य, मेरी भी कल्पनामें एक चित्र था। पर वह कभी जन्म न लेगा। इसलिए नहीं ले पायेगा कि अन्यत्र धधकती हुई ज्वाला शान्त हो चुकी है। मैं अपने जीवनको एक ज्वालामुखीकी साधनामें सम-र्पित करना चाहती थी, कुछ ऐसे रूपमें कि मेरे अपने जीवनकी शीतलता भी उस ज्वालाका पोषण ही करती।

यह भी सम्भव हो सकता था न आर्य ? जिस प्रकार विषसे विष, तापसे ताप शान्त होता है, उसी प्रकार क्या अमृत विष-को अविजयी और शीतलता अग्निको अपराजिता नहीं बना सकती ।"

इसके बाद सुनन्दा वहाँ रुकी न थी । अहिरथ उसके तर्कों-की मायासे ग्रस्त कितनी ही देर तक अपनी सुध-बुध भूला रहा था ।

तन-मनके समस्त क्षोभोंके साथ-साथ प्रतिदिन कथा चलती रही । शिल्पी व्यास-पीठपर । शिल्पी संघ उद्ग्रीव निम्नासन-पर । सुनन्दा अहिरथके एकदम समीप होकर भी नतनयना और अन्तर्लीन । जिज्ञासामें कभी मुखरित होती तो लगता किसी विस्मृत पीड़ाने करवट ली है । अहिरथ कथा सुना रहा था : "कपिलवस्तुका जीवनव्यापार पूर्ववत् चलने लगा था । राजा शुद्धोदन, मातृस्वसा प्रजापती, देवी गोपा ये सब भी जो रहे थे । पर इनकी हर साँस इनके अन्दरकी ज्वालाको धधकाती हुई और भी असह्य हो उठती थी । राजा शुद्धोदन उस शिला-सत्त्व-धारी पत्थर-से लगते जिसकी शिलाजतु रसायनका जोवनके आतपमें आखिरी बूँद तक स्रस्त हो चुका हो । प्रजापती यात्राकी उस थकन-सी दुर्वह हो रही थी जिसका परिहार विश्रामसे भी परे हो । देवी गोपा शाक्य मुनिकी साधनाकी साक्षात् मूर्ति-सी । दिवसके प्रकाशमें जलते दीपककी लौ-सी मलिन । जिसका प्रकाश किसीको आकृष्ट न करे, फिर भी जिसका अस्तित्व अस्वीकार न किया जा सके । और कुमार राहुल ? अभी तो उस निरीहको जगत्की माया व्यापी ही नहीं थी । राजा शुद्धोदनका तो वह खिलौना ही था । देवी गोपा जब राजाको पौत्रसे खेलती

देखतीं तो जाने क्यों उनकी आँखें आसुओंका ताल बन जातीं। कदाचित् कारण यही था कि वे राजाके दुखते मर्मको सबसे अधिक पहचानती थीं। राजा राहुलसे क्रीड़ा करके भी लगते कि अपने वर्तमानसे कहीं पिछड़े हुए हैं। उन्हें अपने सिद्धार्थकी बाललीलाएँ ही याद आतीं और वे तब फिरसे इस चिन्तामें बेचैन हो उठते कि ज्योतिषियोंकी भविष्यवाणियोंको कैसे मिथ्या प्रमाणित करें। राजाके कानोंमें जैसे वे शब्द अब भी गूँजते, 'राजा तू बड़भागी है। नक्षत्री पुत्रका पिता है। सार्वभौमिक राजा होगा तेरा पुत्र। चक्रवर्तियोंके रथ इसके मार्गके बाधक न होंगे। सिंहासनोंकी पाँतें इसके चरणोंमें पाँवड़े बनकर बिछी रहेंगी। तेरा पुत्र दिशाओंमें भी न समा पानेवाली कीर्त्तिका स्वामी होगा।'

इन स्मृतियोंके साथ ही राजा शिशु राहुलको अपनी छातीसे कसकर चिपका लेते। शिशुके फूल-से भारसे उन तूफ़ानी स्मृतियोंको दबाये रखनेका उनका यह प्रयास स्वयं उनकी विडम्बना बनकर रह जाता।

एक दिन ऐसी ही मनोदशामें राजाको समाचार मिला, 'सिद्धार्थ बुद्ध हो गया। उरुवेलामें उसने वह तप तपा कि अब वह ब्रह्म विहारी हो उठा। वह वृक्ष दिव्य हो उठा, जिसके तले सिद्धार्थने सत्यके दीपकको दीप्त किया। वह नीरंजरा तीर्थ बन गयी, जिसमें स्नान कर शाक्य मुनिने तपकी क्लान्ति मिटायी और उरुवेलाके सेनानीकी पुत्री सामान्य स्त्री न रहकर कुछ और ही हो गयी है जिसकी बनायी खीर खाकर शाक्यमुनिके पार्थिव शरीरने सत्यकी वह्निको वहन करनेकी शक्ति पायी। राजा तू बड़भागी है, तू बुद्धका पिता है।'

राजा चीत्कार कर उठा, 'अब वह नहीं लौटेगा। अब वह नहीं लौटेगा। अभागे राहुल, तुझे पिताका प्यार अब कभी न मिलेगा। कभी न मिलेगा। दुखियारी गोपा, तेरे दुःखकी नदी मृत्यु सिन्धु तक बहती रहेगी। बहती ही रहेगी। और मैं शालवनकी आग-सा जलता रहूँगा। जिसका अपना धुआ जलवर्षी-मेघोंका भ्रम पैदा करता रहेगा। पर न तो वे मेघ ही होंगे और न जलवर्षा ही होगी। बस मैं जलता रहूँगा, जलता ही रहूँगा।'

गोपाने सुना। प्रोषितपतिकाका जीवन जोती हुई गोपा। एकवेणीधरा मलिनवसना। समाचार सुनकर वह अपनी वेणीमें जो ऐंठने भरने लगी तो तबतक भरती रही जबतक कि केश-मूलोंमें रक्तकी लिपि प्रकट न हो उठी, और उसके उस बावले-पनको देख माँकी ममतासे भरी प्रजापती गौतमीने ही उसके हाथको थाम न लिया था। गोपा आँसुओंमें गलती हुई कह रही थी, 'अब क्या होगा माँ, अब क्या होगा माँ! अब इस वेणीका भार मैं किस आशामें ढो पाऊँगी माँ? मुझे कतरनी ला दो माँ? यह केश अब नाग बनकर मुझे डसा करेंगे। मुझे इस नाग-लोकसे मुक्ति दिला दो माँ! स्वामी बुद्ध हुए, मुझे भिक्षुणी ही बनकर उनकी शरणमें जाने दो माँ। वे अस्वीकार कर देंगे तो क्या महावीर भी शरण न देंगे। पर वैभवकी इस वेदीपर कण-कण करके अपना होम न कर पाऊँगी माँ?'

तभी पर्यंकपर लेटा हुआ राहुल जाने किस विकलतासे भरकर रो उठा था। मानो उसने माँकी वाणीके अर्थको पूरी तरह ग्रहण करके प्रतिवादमें रोनेके स्वरोंमें कहा हो, 'तो मेरा क्या होगा माँ मेरी, माँ मेरा क्या होगा?.......'

राहुलकी आयुमें अनेक वर्ष जुड़ चुके थे। अब वह आँगनकी सीमाओंका भी अतिक्रमण करने लगा था। प्रजापतीने दौड़कर राहुलको उठाया—राहुल उनींदा-सा ही गोपाकी गोदको अर्पित हो गया था। उस बंजर-सी गोदमें राहुलके मचलते ही सुवास-भरे फूल-से खिल उठे और गोपा सर्वथा विपरीत वेदनासे भरकर कहने लगी, 'मत रो मेरे लाल। मत रो। तेरी माँ तेरे ही पास है। उसके आँचलकी छाया कभी कोई न बाँट पायेगा। वह तेरी ही है मेरे लाल, तेरी ही !!'

समय बहता रहा। शाक्यमुनिकी कीर्ति समय-गंगाके नये-नये तीर्थोंको प्रसिद्ध करती रही। राहुलके अंग पुष्ट होते गये। वाणीका तुतलापन बहुत पुरानी बात हो चुकी थी। अपने पिताकी प्रतिध्वनि ही लगता। बड़ी मनोहर बातें करता। गोपाके लिए रसका सबसे बड़ा स्रोत राहुलकी बाल जिज्ञासाएँ बन चुकी थीं। जब कोई दासी आकर कहना चाहती, 'सुना स्वामिनी, हमारे सिद्धार्थकी कीर्ति कितनी विमल है। ऋषि-पत्तनकी भूमिमें उन्होंने नये धर्मके चक्रका प्रवर्तन किया है' तो गोपा विस्तारमें जानेसे इसकी वर्जना कर देती। और एकान्त पा मन-ही-मन कहती, 'मेरे राहुलके पास तक ये संवाद न लाया कर अभागिन। तूने देखा नहीं कि मेरे राहुलकी जिह्वा-से शब्दोंके स्रोत फूटने लगे हैं और कान अर्थोंके कोष बन चले हैं। मैं अपने लालको ऐसे शब्दोंके अर्थोंसे दूर ही रखूँगी जो उसे ऐसा रूप दे दें जिसमें मैं उसे पहचान ही न पाऊँ। मैं जीवनमें बुरी तरह छली जा चुकी हूँ, अब और न ठगे कोई मुझे।'

एक दिन कपिलवस्तुमें यह समाचार भी पहुँचा कि शाक्य

मुनिने संघकी स्थापना की। अब उनके शिष्य अनन्त दिशाओंमें अनन्त होकर भगवान्के अनन्त धर्मका प्रचार करनेमें प्रवृत्त हो गये हैं। जाने कैसा आकर्षण है शाक्य मुनिमें कि जो उनके दर्शन करता है, वही वीतरागी हो उठता है। जो उनके उपदेश सुनता है, वही विरक्त हो उठता है। युवकोंमें वह अमिताभ सर्वाधिक प्रिय है। यूथबद्ध मृगक्रीड़ा करनेवाले युवक अब प्रवचन और भिक्षाटन करते हैं। भगवान् कहते हैं, 'सत्यके पथपर एकाकी चलना कठिन है, असाध्य है। एकाकीका पतन हो सकता है। उसे उसके पूर्व जीवनकी आसक्तियाँ पथभ्रष्ट कर सकती हैं। अतः भिक्षुओ, एक-दूसरेकी शक्ति बनो। एक-दूसरेकी साधनाके प्रहरी बनो। संघबद्ध होओ।'

गोपा सुनकर चिन्तित हो उठी थी। कहीं एक दिन वह बुद्ध आकर उसके राहुलको भी तो भिक्षाकी तरह न ले जायेगा। उसे कपिलवस्तुके लोगोंपर भी कम आक्रोश न आता जिन्हें बुद्धचर्चा जाने क्यों इतनी प्यारी थी? और जाने कहाँ-कहाँसे एकसे-एक विचित्र समाचार उनके पास उड़-उड़कर आते रहते थे।

पर उस दिन तो राजा शुद्धोदन और देवी गोपाकी विकलताकी सीमा न थी जब कपिलवस्तुमें श्रेष्ठीपुत्र यशकी प्रव्रज्याका समाचार फैला। हर किसीके मुखपर एक ही गाथा थी, 'वाराणसीके जगत्-प्रसिद्ध श्रेष्ठीका पुत्र भी भिक्षु हो गया। उस श्रेष्ठीके वैभवकी कोई सीमा न थी। सुवर्णद्वीप तकसे उसका व्यापार होता था। काशीका स्वर्णखचित परिधान उसकी कृपासे किस देशकी रानीने नहीं पहना और किस देशके राजा

के उष्णीष तक वह नहीं पहुँचा? पर जानते हो उसीके पुत्र-को क्या बावलापन सूझा? भिक्षु हो गया। कभी भूमिपर पाँव नहीं रखा था। पर्यंकपर रहता था कि सुन्दरियोंकी पलकोंपर। पर शाक्यमुनि नगरमें पधारे तो वह किसीके रोके न रुका। सुन्दरियोंके आकर्षणकी रज्जु बन्धनका भ्रम भी न बनाये रख सकी। अरे सुना नहीं तुमने कि रात्रिके निभृतमें भगवान्‌के पास जा पहुँचा। ये सभी युवक एक-से हैं। रात्रिमें ही इनकी वासनाएँ प्रबल होती हैं। फिर चाहे वे विलासकी वासनाएँ हों या धर्मकी वासना। जानते हो भगवान्‌के पास जाकर उसने क्या कहा? बोला कि इस जीवनमें कितने दुस्तर दुःख हैं। कितने क्लेश हैं। उत्तरमें भगवान्‌ने मुसकरा-कर कह दिया कि यहाँ कोई दुःख नहीं, यहाँ कोई क्लेश नहीं। जो जीवन तुम जीते हो वही दुःखमय है, वही क्लेशमय है। भगवान्‌की वाणीका कुछ ऐसा जादू चला कि तभी वह क्षुब्ध युवक एकदम शान्त हो उठा और बार-बार कहने लगा, 'सच-मुच ही यहाँ न कोई दुःख है, यहाँ न कोई क्लेश है।'

अपने समस्त विस्तारके साथ यह समाचार राजा शुद्धोदन-के पास भी पहुँचा। क्षण-भर तो वे स्तब्ध ही रहे। पर धीरे-धीरे उनके नेत्रोंकी श्वेतिमा ललाईमें डूबकर जाने कहाँ खो गयी और पीड़ा आँसू बनकर तिरने लगी। वे ताप-दग्ध शब्दों-में कहने लगे, 'अब किसी पिताका सुख स्थिर नहीं रह पायेगा। अब किसी माँकी गोद भरी न रह पायेगी। ओ रे सिद्धार्थ, तूने यह कैसी माया फैला दी! अब तरुणोंको तरुणाईमें रस ही नहीं मिलता। वे सब अकाल वृद्ध हो उठे। गौतम यह उनके अति विलासकी प्रतिक्रिया है, या कि तेरे बताये सत्यका आक-

र्षण जो वे तेरी ही शरणमें दौड़ रहे हैं। पर पुत्र, यदि मैं तुझे पुत्र कहकर सम्बोधित कर सकता हूँ तो एक बात तो बता कि तेरा यह कहाँका न्याय है कि जो तू कुल-दीपकोंको जंगलकी मशालें बनाकर परिवारके स्वर्गको अन्धकारके असुरोंके हवाले कर रहा है।'

राजा स्वयं ही वक्ता थे, स्वयं ही श्रोता। इतना कहकर वह स्त्रीकी तरह रो उठे और 'राहुल मेरे कुल-दीपक राहुल' पुकारते हुए देवी गोपाके भवनकी ओर अस्त-व्यस्त-से दौड़ पड़े।"

कथा चल रही थी, "लोकचक्षु आंगिरस शाक्यमुनिकी धवल कीर्ति प्रकर्षमान सूर्यकी रश्मियोंकी तरह अज्ञानके अन्धकारके दुर्गोंपर वैजयन्ती-सी लहराने लगी थी। गणसंघोंके युवाओंको तो जाने सुगतकी वाणीमें कौन-सा आकर्षण मिलता था कि उन्हें अपनी प्रियाओंसे भी प्रिय बुद्धकी शरण लगती। वृद्धोंमें क्षोभ था। उन्हें लगता कि उन सबकी वंश-परम्परा इस गौतमके बनाये संघ-सिन्धुमें ही डूबकर समाप्त हो जायेगी। कहाँ तो माता-पिता सन्तानको व्यसनोंसे दूर रखनेकी चेष्टा करते थे पर अब उन्हें प्रव्रजित होनेसे बचानेके लिए व्यसनोंमें प्रवृत्त करने लगे। अमृतके प्रभावको कम करनेके लिए विषकी सहायता ली जाने लगी। नगरोंका रूप ही बदल गया। सर्वत्र नट-नर्तकी द्यूतोंके प्रेमी। कहीं मदमस्त हाथियोंका युद्ध होता तो कहीं वृषभ महिष अश्वोंका। मनोरंजन निर्दयसे निर्दयतम हो चले। हाथियोंको मदिरा पिलाकर दुर्गोंकी सूखी परिखाओंमें आत्मघातके लिए छोड़ दिया जाता। जब एक-दूसरेके शिर-कुम्भोंकी टक्करसे मतवाले हाथी अपनी-अपनी सूँड़ उठाकर चीत्कार करते तो दर्शक आनन्द-विभोर हो उठते।

दन्तियोंके वज्रदन्त शरीरपर पड़ते तो अंगोंको विदीर्ण कर डालते। परस्पर टकराते तो टूटने लगते। विशालकाय हस्तियोंका उस समयका क्षोभ किसी भी सामान्य मनोदशाके व्यक्तिके लिए असह्य हो उठता। पर जैसे समस्त समाजके चेतना स्नायु किसी अज्ञात भयसे ऐसे शिथिल हो चुके थे कि उन्हें अपने जीवनको पकड़े रहनेके लिए ऐसे उग्र उत्तेजनोंकी आवश्यकता थी ही। पशुओंकी इन क्रूर क्रीड़ाओंमें मनुष्य अपना मनोरंजन खोजता रहा। नृत्य संगीतका प्रचलन भी कुछ ऐसा बढ़ा कि गृहस्थोंका पारिवारिक जीवन अवरुद्ध-सा हो गया। पर पत्नियाँ इससे निराश न थीं। वे जानती थीं कि बुद्धकी शरण जाकर कोई नहीं लौटता। पर वार-वनिताओंके प्रेमी अवश्य ही लौटते हैं। रात्रिमें नहीं तो दिनमें निश्चय ही। और जब उनपर निछावर करनेको सुवर्ण धरण कार्षापण नहीं रह जायेंगे तब तो नगर-वधुओंसे विमुख होकर कुलवधुओंकी अपेक्षिता स्वीकार करेंगे ही।

द्यूत-क्रीड़ाएँ भी असाधारण रूपसे लोकप्रिय हो चुकी थीं। छोटी जातियोंमें लोहेकी गोलीका खेल, बाँसका खेल प्रिय होता जा रहा था। वे गज-युद्धोंका आयोजन तो नहीं कर पाते किन्तु कुक्कुट-युद्धोंसे अवश्य ही मनोरंजन कर लेते। नगरके उपान्तोंमें इसी तरहके लोग लाठीका खेल खेलकर अपना मनोविनोद करते। हर पिता मनोरंजनके आयोजनोंकी सूचनाएँ संग्रह करने-में अधीर रहता। अपने युवा पुत्रके सुबह उठते ही वह उसे नगरके समाचार सुनाते हुए कहता, 'पुत्र, आजके आयोजनोंकी तो बात पूछो मत। विक्रान्त जाने कहाँसे दो वन्य महिष ले आया है। ऐसे भयंकर हैं कि गज उनके मार्गसे हट जायें। गेण्डे

तक टक्कर लेनेका साहस न करें। कज्जलवर्णी कालनागकी गुंजल्क-से उग्र शृंग। आँखें अंगारों-सी। नथनोंसे साँस क्या छोड़ते हैं, लगता है आग उगल रहे हैं, तिसपर विक्रान्तने उन्हें मदिराके भाण्ड पिलाये हैं। अब तुम्हीं बताओ कि क्या तुमने कभी ऐसी क्रीड़ा देखी। जब ये दोनों महिप एक-दूसरेको परास्त करनेके लिए उग्र रूप धारण करेंगे तो क्या कोई इनके उद्योगको रोक सकेगा। मेरी तो इतनी आयु हुई, पर मैंने तो कभी किसी ऐसे आयोजनकी बात भी नहीं सुनी। तो तुम सन्ध्या समय तैयार रहना। हम साथ ही विक्रान्तके बाड़ेमें चलेंगे।'

उधर नववधुओंको आशीर्वाद देते हुए वृद्धजन कहते, 'तुम्हारा सुहाग अचल हो। तुम्हारे वरपर कभी किसी प्रव्रजितकी दृष्टि न पड़े। तुम्हारे पतिकुलके नगरमें कभी किसी भिक्षुसंघका आवास न हो।'

पर भगवानके आकर्षणको कोई उपाय कम न कर सका। अमृत यदि विषसे मर सकता तो वह अमृत ही कहाँ रह जाता। जितना ही गहरा अन्धकार होगा, प्रकाशकी किरण उसमें उतनी ही कमनीय होकर खिलेगी। छायाएँ आलोकके ओघमें भुनगों-सी तिरती रहती हैं, जो क्षण-जीवी भी तो नहीं कही जा सकतीं। तथागतने जिस चक्रका प्रवर्त्तन किया था वह उसी प्रकार अव्याहत गति था जिस प्रकार रात्रि-दिवसका आवर्त्तन।

राजा शुद्धोदनको भी पौत्रकी चिन्ता होती। कहीं पितृपथका ही अनुसरण न करे। वे भी कभी-कभी चाहते कि उसे विषयोंमें आसक्त रखनेके लिए इसे अबोध कालसे ही विलासोंको समर्पित कर दें। पर उनका अपना अनुभव था कि ऐसे प्रयत्न कितने हीन होते हैं। उनका अपना सिद्धार्थ क्या ऐसे प्रयत्नोंसे

प्रव्रजित होनेसे रोका जा सका था ?

राजा पुत्रकी स्मृतियोंमें खो गये। पास ही बैठे राहुलका ध्यान तक न रहा। वे सोचते रहे, 'कितना सुन्दर सुरूप और सौम्य था मेरा सिद्धार्थ। उसकी गतिमें देवों-जैसा आकर्षण था। भीड़में भी चलता तो शत सहस्र जनोंके उष्णीषधारी सिर उसके कन्धोंके नीचे ही डूब जाते। सभी शास्त्रोंमें पारंगत। सभी विद्याओंमें प्रवीण। गोपाके पितृपादने उसकी संन्यासी-मनोवृत्तिके बारेमें सुन रखा था। इसीसे कहा था कि मैं अपनी लाडलीको ऐसे ही युवाको दे सकता हूँ जो शास्त्रमें पण्डित और शस्त्रमें धीर हो। तब उस लम्बी भुजाओंवाले मेरे वीर पुत्रने कैसा अद्भुत आयुध कौशल दिखाया था। पर····पर वह सब स्वप्न ही था क्या ? वाणीका मधुर, आचरणमें विनम्र, आकृति मनोहर, अत्यन्त रोचिष्मान् वर्णवाला मेरा वह पराक्रमी पुत्र क्या हुआ ?'

अचानक राजाको आँखोंसे आँसू झर उठे, जिन्हें देखकर मिठबोला राहुल दुःखी स्वरमें कह उठा था, 'रोते हो तात !'

राजाने शीघ्रतासे अपने आँसू पोंछ लिये थे और बेमनकी हँसी हँसते हुए कहा था, 'कहाँ पुत्र ! पता नहीं आँखोंमें कौन-सा कड़ुआ धुआँ गहरा उठा था।'

राहुल इस श्लेषको कहाँ समझ पाता !

राहुल उस आयुको प्राप्त हो चुका था, जिसमें बालकमें विचित्र कहानियोंके सुननेके बीज अंकुरित होने लगते हैं। पितामह उसे कहानियाँ सुनाते। प्रजापती तो बात ही कहानियोंमें करती। दासियाँ भी उसे शान्त रखनेके लिए कहानियाँ सुनाने लगतीं, यदि उसके सामने कोई गूँगा बना रहता तो गोपा ही।

किन्तु उस दिन कुमारने ऐसी हठ पकड़ी कि गोपाको हार माननी पड़ी। पर जैसे उसे तो एक ही कहानी आती थी। और वह भी उस व्यक्तिकी जो उसे आधी रातमें वंचना करके छोड़ गया था। उसकी स्मृति भी उसका कण्ठ रूँध डालती थी। पर उस दिन देवी गोपाको जाने किसने इतनी शक्ति दे डाली कि वह पुत्रको पिताकी अद्भुत गाथा सुनाने लगी, 'पुत्र, एक समयकी बात है। नहीं, हमारे ही समयकी बात है। तेरे अपने समयकी बात है राहुल। एक बड़ा ही तेजस्वी राजकुमार था। देवदार-सा लम्बा। मूसल-जैसी भुजाएँ। डग ऐसे रखता जैसे कि त्रिविक्रम हो। बस तीन ही डगोंमें सब कुछ नापकर छोटा बना देगा। और बेटा, उसने एक दिन ऐसा डग भरा कि गृह परिवार सबकी सीमाएँ छोटी पड़ गयीं। वह श्रमण हो गया।'

राहुलने तोतली जिज्ञासा की, 'श्रमण क्या अम्ब ?'

गोपाको ठोकर-सी लगी, श्रमणको देखकर ही तो उसके पतिमें श्रमण बननेकी जिज्ञासा जगी थी और आज उसका पुत्र भी उससे वैसी ही जिज्ञासा कर रहा है। वह राहुलको कैसे समझाये कि श्रमण क्या होता है। साधु, संन्यासी, भिक्षु कुछ भी कहकर तो वह उसे समझा न सकेगी। वह तो हठात् ही इस-संज्ञाके बोधसे दूर रखा गया है। यह राहुल हठी था। पूछता ही रहा, 'श्रमण क्या अम्ब ?'

गोपाके मनमें हलका-सा क्षोभ जागा—यह भी उन्हींकी सरणि चलेगा। वैसा ही हठी। उसने डाँटकर उसे चुप कर देना चाहा था। पर जाने कितने दिन उसका है, जितने दिन उसका है उतने दिन तो उसे प्यार कर ले। इसीसे कहा, 'श्रमण हम सबसे निराला होता है पुत्र, तुझसे मुझसे तातसे।

वह घर होनेपर भी घरको स्वीकार नहीं करता। वह अच्छे भोजन, अच्छे पर्यंक और अच्छे भोगोंका त्याग करके निषेधोंकी दुनियामें रमता है। जहाँ सब कुछ है वहाँ उसे धर्म नहीं दिखता। जहाँ कुछ नहीं वहीं वह पापसे अछूते धर्मका दर्शन करता है। वह हमारे ही लोकका जीव होता है। पर यह माननेको तैयार कभी नहीं होता। वह विचित्र प्राणी होता है। मेरे लाड़ले समझा न !'

राहुल भला क्या समझता। यह सब कुछ सुनकर उसकी श्रमण-सम्बन्धी जिज्ञासा सहम उठी थी। बस उसने उसे और अधिक न समझनेकी चेष्टा करते हुए पूछा, 'फिर माँ !'

गोपाने ठण्डी साँस छोड़कर सुनाया, 'तो पुत्र, वह श्रमण क्या हुआ कि दुनियामें हलचल मच गयी। जाने कौन-सा जादू था उसकी वाणीमें कि जो कोई उससे दो बातें कर लेता, वही सिर मुँड़ा चीवर ले, घरसे वनको भाग खड़ा होता। उस अकेलेने सारी दुनियामें एक अजीब-सी आँधी चला दी। परिवारोंकी मर्यादाएँ टूटने लगीं। पत्नियाँ सुहाग रहते भी सुहागिन न रहीं। पिताके रहते भी सन्तानें अनाथ होने लगीं।'

राहुलने निर्णय दिया, 'मुझे और कोई कहानी सुनाओ माँ। वह श्रमण अच्छा नहीं था।'

गोपाने अशुभसे आशंकित होकर राहुलके मुखपर हाथ रखते हुए कहा, 'था नहीं बेटा, है। वह श्रमण अब भी है। बड़े-बड़े राजकुलोंमें उसका समादर है। मगधका श्रेणिय बिम्बसार इतना प्रतापी और निरंकुश राजा होनेपर भी उस श्रमणके अंकुशके अधीन हो गया है। बड़े-बड़े श्रेष्ठी उसकी चरण-रजपर अपने सुवर्ण-कोषोंको लुटाने लगे हैं। बड़े-

बड़े ज्ञानी मानो उसके आगे विनत हो गये हैं। उसकी यह कहानी बड़ी अद्भुत है मेरे लाड़ले। एक दिन वह श्रमण चारिका करता हुआ उरुवेलामें पहुँचा। उरुवेलामें ब्रह्म संन्यासी रहते हैं। उनके बाल जटा रूप हैं। इसीसे पुत्र, उन्हें जटिल कहते हैं। उन जटिलोंका मुखिया एक बहुत ही महान् ब्राह्मण है कश्यप। उसका नाम आर्यखण्ड और उसकी सीमाओंसे भी आगे समस्त जम्बुद्वीपमें फैला है। समस्त भरत खण्डमें वह पूज्य है। एक दिन वह श्रमण उसीके यहाँ पहुँचा। कश्यप-के समान धर्मका ज्ञान भला किसे था? कश्यपके समान बुद्धिवाला भला कौन था? लम्बे-लम्बे डगोंसे चलते हुए उसके पास पहुँचकर श्रमणने कहा, 'आर्य कश्यप' मैं गौतम हूँ। मैं तुम्हारे अग्नि-गृहमें वासकी इच्छासे आया हूँ। मुझे आजकी रात उसी कक्षमें रहने दो जहाँ तुम्हारी पवित्र अग्नि दिन-रात जाग्रत रहती है।'

कश्यपने श्रमणको देखा। उसके रूप, उसकी वाणी, उसकी आँखोंकी ज्योतिसे प्रभावित हुआ। फिर भी कहा, 'स्वागत करता हूँ श्रमण। मेरे आश्रममें स्थानका संकोच नहीं। अग्नि कक्षको छोड़कर जहाँ चाहो ठहर लो। ऐसा मैं तुम्हारे अपने हितमें कहता हूँ सौम्य।'

'पर श्रमण सदाका हठी था, इतना कहकर गोपाने अपने दाँतोंसे अपने होठोंको ही जैसे स्वयंकी ताड़ना करनेके लिए काट लिया। कोमल और अवसादसे फीके पड़े अधरपर रक्त-की रेखा उमड़ आयी। राहुलको कुतूहली दृष्टिसे अपनी ओर निहारते देख वह सावधान हुई और कहने लगी, 'हाँ वत्स, श्रमण न माना। आग्रह करता ही रहा। उसने बार-बार यही

कहा—महाभाग कश्यप, कहो तो मैं लौट जाऊँ। पर आवास लूँगा तो तुम्हारे अग्निकुण्डके पास ही।'

कश्यपने उसे निरुत्साहित करते हुए अन्तिम बार कहा, 'सौम्य, जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम अतिथि हो। मेरे द्वारसे अस्वीकृति तो लेकर नहीं लौटोगे। पर फिर भी सावधान कर दूँ कि यह अग्नि सामान्य आग नहीं जिसमें पकाये तन्दुलकी तुम भिक्षा ग्रहण करते हो। यह अग्नि देवताओंकी धात्री है। सृष्टिकी संरक्षिका है। जो तेज अंश तुझमें, मुझमें, नक्षत्रों, चन्द्रमा और सूर्यमें है, वह सब इसीका दान है। सूर्यका सान्निध्य सम्भव है, पर मेरी अग्निका नहीं। तुम्हारी सुवर्ण-सी कोमल कान्तिवाली त्वचा उससे दझकर काली पड़ जायेगी। तुम्हारी आँखोंकी ज्योति सदाके लिए बुझ जायेगी। इतना ही नहीं भद्र, वह अग्नि काल-तुल्य महानाग-द्वारा सेवित है। वह नाग ही जैसे उस अग्निके मन्दिरका प्रहरी है। उस नागके फूत्कार करनेपर गरलकी वर्षा होती है। वह विष ऐसा तीक्ष्ण है कि उसे छूकर पत्थर भी संखिया बन जाता है। आयुष्मान्, मेरी उस अग्निके सान्निध्यके लिए असाधारण तपकी आवश्यकता है। बोलो सौम्य, क्या तुमने इतना तप तपा है कि मेरी अग्नि ही शान्त हो जाये?'

श्रमणने उत्तर दिया, 'महाभाग, सत्य ही मेरा तप है। मैं इससे श्रेष्ठ किसी तपको नहीं जानता। सब जीवोंके प्रति मैत्री-भावना मेरी प्रवृत्ति है। अतः नाग निर्वैरसे वैर साधेगा, मुझे सन्देह है। मुझे अग्निके समीप ही वास करने दें जटिलवर!'

गोपाने कहानी आगे कही, 'और बेटे, वह जटिल ब्राह्मणोंका अगुआ, उस श्रमणकी हठसे हार गया। उसने झिझकते-झिझकते

आज्ञा दे ही दी। उसे दुःख था कि अगले दिन सुबह वह जब अग्निकुण्डके पास जायेगा तो यह सुन्दर आकृतिवाला श्रमण महानागके विषसे जलकर क्षार हो चुका होगा।'

राहुलने उत्सुकतासे पूछा, 'इस नागने उस श्रमणको डसा तो नहीं अम्ब?'

तथागतके श्रमण रूपको आँखोंमें बन्द करती हुई गोपाने धीरजसे कहा, 'सुन बेटे, सुन। अगले दिन सवेरे जब जटिलोंमें श्रेष्ठ महाभाग कश्यपने अपने अग्नि-कक्षमें प्रवेश किया तो जो कुछ वहाँ देखा उसे देखकर अवाक् ही रह गये। महानाग निष्प्राण केंचुली-सा अग्निकुण्डके समीप पड़ा था और अग्नि-कुण्डमें अब कश्यपके पूर्वजों-द्वारा प्रवृद्ध अग्नि भस्मशेष थी। जिस कुण्डमें अग्निका देवता उसके वंशकी अनेक पीढ़ियोंसे भास्वर रहा, वहाँ अब ठण्डी राखकी ढेरी थी, मानो महानाग-की चिताकी ही भस्म हो।'

राहुलने चमत्कृत होकर कहा, 'अम्ब, मैं उस श्रमणके दर्शन करूँगा। मुझे उसके पास ले चलो अम्ब!'

गोपाने सरोष कहा, 'तो कहानी नहीं सुनेगा?'

राहुल शान्त हो गया। गोपा पछताती-सी सुनाती गयी, 'तो पुत्र, कश्यपने हार मान ली। वह अपने अनुयायियों सहित श्रमणका अनुगत हो गया। उसने कहा, 'शाक्यमुनि, तुम्हारा तप श्रेष्ठ है। तुम सत्यके भोक्ता हो।'

राहुल उचक उठा, 'शाक्य अम्ब!'

'सुन बेटे, सुन!' गोपाको उसकी जिज्ञासाएँ नहीं सुहा रही थीं। साथ ही कहानी बीचमें रोकना भी नहीं चाहती थी। अपने प्रव्रजित पतिकी चर्चा करके उसे लगता कि जैसे उसने अपनी वाणीसे उसे बाँधकर अपने पास ही रोक रखा है। वह

कहती गयी, 'पुत्र, कश्यपने तभी नीरंजरा नदीमें अग्नि-होत्रकी अपनी सारी सामग्री बहा दी। उसी नीरंजराके तटपर नीचेकी ओर कश्यपके दो भाई नदी कश्यप और गया कश्यप रहते थे। उन्होंने नदीमें बहती उस सामग्रीको देखा तो उन्हें अपने महान् भाईके अनिष्टकी आशंका हुई। वे दौड़े-दौड़े उरुवेला आये और वहाँ आकर वह सब कुछ देखा जो देखकर भी विश्वसनीय नहीं लगा। फिर भी वे दोनों अपने सभी अनुयायियोंके सहित शाक्यमुनिकी शरणमें गये। महाश्रमणने उन्हें प्रेमसे स्वीकार करते हुए उपदेश दिया : हे जटिलवर, सभी पदार्थ तो ज्वलन-शील हैं। देखो ये आँखें जलती हैं, ये सभी इन्द्रियाँ जलती हैं। विचार भी जलते हैं। सभी कुछ मारकी जलायी आगमें जलता है। क्रोध, अज्ञान और घृणाके नाग आगको बुझने नहीं देते। सौम्य, जबतक इस अग्निका सम्पर्क अदाह्य पदार्थोंसे नहीं होगा तबतक यह प्रवृद्ध ही रहेगी। और तबतक जीवन-मरण, नाश, शोक, वेदना, यातनाकी परम्पराएँ चलती रहेंगी। इस सत्यको जाननेवाला धर्मको जान लेगा। चार आर्य सत्योंको जानकर आर्य अष्टांगिक मार्गपर चलता हुआ वह मारजित होकर ब्रह्म-विहारी हो उठेगा!'

इतना कहकर गोपा आँसुओंसे भीग उठी थी। मारजितका अर्थ था स्त्रीजित। उसका अपना पति मारजित होकर दुनिया-भरकी सुहागिनोंके सुहागको चंचल कर रहा था। गोपा कुछ ऐसी अधीर हुई कि राहुलकी उपस्थिति भूल जाने किसे सुनाकर कहने लगी, 'मैं भी महाभाग कश्यपकी अग्निकी तरह जाने कबसे जल रही हूँ। ये वेदनाके नाग मुझे चैन नहीं लेने देते। ओ श्रमण, मुझे भी आकर उपदेश कर जाओ ना! मैं भी आर्त्तिग्रस्त हूँ। मैं कोई पृथक् प्राणी नहीं। स्त्री समझकर मुझे

मारकी अनुयायी न मान !'

तभी उधर प्रजापती निकल आयी थीं। विक्षिप्त-सी अम्बके आँसुओंको पीड़ासे भरकर पोंछते राहुलको देख वे स्तब्ध ही रह गयी थीं।"

इससे पूर्व कि अहिरथ कथाको विराम लगाकर स्वयं उठ खड़े होते, सुनन्दा उठी और बाघके एकान्त तीरकी ओर चल पड़ी थी।

एकान्त पाकर सुनन्दा रो उठी। वह हाथोंमें मुँह थामे तटके एक विशाल पत्थरपर बैठी रोती रही। सिरपर मध्याह्न-सूर्य प्रखर था। चरणोंमें बाघ उदास-सी बह रही थी। गुहाओंसे दूर होनेसे शिल्पीसंघकी उपस्थितिका बोध करानेवाली कोई ध्वनि तक उसके एकान्त रुदनको भंग नहीं कर रही थी। थोड़ी देरमें उसके आँसू थमकर आप ही पथरा गये। उसके कपोलोंपर अपने प्रवाह-मार्गमें कुछ वर्णहीन ऐसी सूखी रेखाएँ-भर छोड़ गये जिनके नीचेकी त्वचा बाद तक जलती-सी रही। वह मूक भावसे बैठी यही सोचती रही कि क्या स्त्रीके भाग्यमें सदैव इसी प्रकार जलना रहा है। वह पुरुषसे निरपेक्ष क्यों नहीं हो सकती? पुरुषकी साधनाका आरम्भ भी उसीके बलिदानसे क्यों होता है?

इसी प्रकार अनेक अभियोग-भरे प्रश्न उसके मनमें घुमड़ते रहे। पर समाधान उसे न मिला। समाधान मिलता भी कैसे? उसके अपने भीतरकी आग ही तो उसका दाह कर रही थी।

सुन्दर शमी वृक्षको देखकर कब कौन जान पाता है कि उसके काष्ठ-धर्मी स्नायुओंमें ऐसे अंगार सुप्त हैं जो लपटोंके नाग बनकर वनान्त तककी भूमिको अग्निपिण्ड-सा रूप दे सकते हैं। सुनन्दाके ठीक पीछे खड़े आचार्य अहिरथ भी यह न जान सके कि शमी वृक्ष-सी सुनन्दाकी देह-लता किस ज्वालामुखीके बीजको पोस रही है? जब काफ़ी देर तक सुनन्दा गुहामें वापस न लौटी तो वे व्यग्र भावसे उसे ढूँढ़ते यहाँ पहुँच गये थे। उसकी चिन्ता-समाधिको टूटते न देख आचार्यने पुकारा था, "किस चिन्तामें रत हो देवी सुनन्दा?"

सुनन्दाने सुना। आचार्यकी आवाजको पहचाना भी। पर उसे वह ध्वनि अपनी कल्पनाकी प्रतिध्वनि-भर लगी। भला आचार्य क्यों यहाँ आनेका कष्ट करेंगे। वह निस्पन्द भावसे बैठी ही रही। आचार्यने पुनः पुकारा, "भोजनकी बेला बीती जा रही है सुनन्दा। अपने साथ मुझे भी भूखा रखोगी?"

भूख। सुनन्दाको प्रत्यक्ष हुआ कि यह ध्वनि ही है, प्रतिध्वनि नहीं। मनने करवट ली। उसकी कल्पनाका विहग एक शिखरसे दूसरे शिखरपर जा बैठा। वह तेज़ीसे उठ खड़ी हुई और आचार्यकी ओर सचिन्त दृष्टिसे देखती हुई बोली, "ओः, क्षमा चाहती हूँ आचार्य। भला आपने भोजन क्यों नहीं किया अभीतक?"

आचार्य धीरे-से हँसे, "कैसे कर लेता? तुम भूखी बैठी रहो और मैं भोजन कर लूँ?"

सुनन्दाने कृतज्ञ भावसे कहा, "आचार्यको इतनी चिन्ता है मेरी?"

आचार्यकी हँसी पहलेसे थोड़ी और ध्वनिमय हुई, "यह आचार्य पद देकर तुम लोगोंने मुझे बन्धनमें बाँध दिया? भला

जबतक शिल्पीसंघका प्रत्येक व्यक्ति तृप्त न हो ले, मैं कैसे भोजन कर सकता हूँ !"

सुनन्दाके मनमें उमगता-सा सुख फिरसे सहम गया। आचार्यकी चिन्ता उसकी व्यक्तिगत चिन्ता न थी। यह तो उनके आचार्य-धर्मका निर्वाह है। किसी भी शिल्पीके प्रति उनकी यही चिन्ता होगी। पर तृप्तिकी बात तो भ्रामक है। क्या आचार्यने सचमुच ही जानना चाहा कि तरुणाईमें जन्मभूमिसे इतनी दूर एकाएक चली आनेवाली यह सुनन्दा कितनी तृप्त है। बस वह पूछ ही तो बैठी, "आचार्य, तो आप मान लेते हैं कि भोजनसे क्षुधाकी निवृत्ति हो जानेसे सब तृप्त हो जाते हैं ?"

आचार्य गुहाकी ओर चलनेके लिए पाँव उठा चुके थे। किन्तु सुनन्दाके इस प्रश्नको सुनकर ठिठक उठे। प्रश्नने उनके मनमें अप्रत्याशित-सा भाव जगा दिया था। अपने कानोंपर विश्वास करना कठिन पाकर पूछ बैठे, "तुमने क्या कहा देवि ?"

सुनन्दा सँभल गयी थी। तनिक व्यंग्यके साथ पूछा, "मैं पूछ रही थी आचार्य कि आपकी तृप्तिकी परिभाषा क्या है ?"

आचार्यने कहा, "मैं जिस जीवनको अंगीकार कर चुका हूँ उसमें तो तृप्तिकी परिभाषा तृप्तिकी आकांक्षाका पर्यवसान ही है।"

सुनन्दाने तर्क किया, "फिर भी आप क्षुधाकी तृप्तिकी बात सोचते हैं ?"

आचार्यका उत्तर था, "वह तो शरीरका धर्म है देवि !"

सुनन्दाने दुष्टता-भरी मुसकानके साथ पूछा, "शरीरके तो अनेक धर्म हैं आचार्य, उन धर्मोंकी भी कभी आपने चिन्ता की ?"

आचार्य गम्भीर हो चले थे। इस प्रश्नके साथ उनके मनमें

अनेक तर्क-वितर्क उठ खड़े हुए थे। अपने भीतर-ही-भीतर उन सबसे जूझते हुए उन्होंने रुक-रुककर कहा था, "शरीर धर्मका साधन है। इस शरीर-साधनके लिए जो आवश्यक है वह भी धर्म है। क्षुधाकी तृप्ति वैसा ही धर्म है। इसके अतिरिक्त जो शरीरकी तृप्तियाँ हैं, वे चपल मनका विलास हैं। विलासी मन कभी तृप्त नहीं होता। वह कभी हुआ ही नहीं। वह कभी होगा भी नहीं।"

सुनन्दाके मनमें तिक्तता जागी। उसने कटु होकर कहना चाहा, "तुम पुरुष, सचमुच ही वाग्विलासी हो। शब्दोंको जैसा चाहते हो अर्थ दे डालते हो। तुम्हारी शब्द-माया किसी भी मायासे बड़ी है। तुम्हें, यदि मुझसे प्रेम प्रदर्शन करना होता तो तुम कुछ और ही कहते। मुझे बताते कि प्रेम महान् पुण्य है। वह देहपर आधृत होकर भी देहातीत है। उसकी चरम परिणति शरीरके माध्यमसे ही है। तृप्त वासनाओंकी भूमिमें ही अकलुष प्यार जन्म लेता है। देहके सिंहासनपर ही प्रेमका देवता अभिषिक्त होता है। देहका भोग ही वह देव यज्ञ है, जिसमें पड़ी प्रत्येक आहुति प्रणय-देवताकी तृप्ति करती है। और देहके ये आवरण पाप हो उठते हैं यदि वे प्रणयीकी दृष्टिका अवरोध करें। जिस प्रकार धरतीको नीला अम्बर आवृत किये रखता है, उसी प्रकार पुरुषका महान् प्यार नारीके सुन्दर शरीरमें जागती हुई कामनाओंको अपने वक्षमें समाकर महान् तृप्ति-यज्ञका सम्भार करता है।

पर सुनन्दा कह कुछ भी न पायी। न कह पाकर उसके स्नायु कठिन हो चले। कठिन स्नायुओंमें अनमनीय-सी होकर वह आचार्यके पीछे-पीछे चल पड़ी। आचार्यकी छाया अनेक बार

उसके चरणोंके नीचे आ जाती। सुनन्दाके मनमें आता कि उस छायाको ऐसे कसकर दबा दे कि वह वहीं पथरा जाये। पर आचार्य बढ़ चलते। छाया पीछे दौड़ चलती। सुनन्दा उस छायाके पीछे बढ़ चलती। आचार्यकी छायाके पीछे-पीछे दौड़ते-दौड़ते उसने गहरी वेदनाके साथ अनुभव किया, ओः! वह छाया तकको न बाँध पायी। फिर उसका स्वामी? वह निर्बन्ध ही रहेगा। सर्वथा निर्बन्ध।"

उसी दिन सन्ध्या समय जब गुहाओंमें अन्धकार निविड़ हो चुका था, उस विशाल गुहाकी भूमिपर शिल्पीसंघ एकत्र हुआ। गुहा स्तम्भोंके सहारे जलती हुई मशालें अन्धकारमें लाल प्रकाशका कमल-सा खिला रही थीं, जिनके आलोकमें शिल्पियोंके पीले मुख भी कुछ अधिक आकर्षक और कुछ अधिक रहस्यमय जान पड़ रहे थे। अहिरथ व्यासपीठपर था। सुनन्दा सदाकी भाँति उसके समीप ही एक स्तम्भसे पीठ लगाये बैठी थी। शिल्पियोंके कुतूहल-भरे मौनके समाधानमें ही जैसे अहिरथने कथाका सूत्र बढ़ाया :

"तथागतकी कीर्ति सोलहों कलाओंवाले पूर्ण चन्द्रके समान वसुधापर अपना दिव्य प्रसार कर चुकी थी। गणराज्यों और एकच्छत्र राज्योंमें समान रूपसे पूजित अकेला व्यक्तित्व था सुगतका। मगधका राजा बिम्बसार ही नहीं उसका दुर्विनीत पुत्र अजातशत्रु भी भगवान्के सम्पर्कमें विनयसे भर उठता।

भगवान्की कीर्तिके साथ-साथ संघ भी पुष्ट होता गया।

कोडञ्ञ, बप्प, भद्दिय, महानाम और असज्जि, ये पाँचों ब्राह्मण तो भगवान्‌के प्रथम उपदेशको पाकर शिष्य हो ही चुके थे। उसके बाद वाराणसीके प्रसिद्ध श्रेष्ठीका पुत्र यश शिष्य बना। यशका श्रेष्ठी पिता भी भगवान्‌का उपासक शिष्य बना। उसकी माता और उसकी पत्नी भी भगवान्‌की उपासिका शिष्य बन चुकी थीं। यशके चार अन्यतम मित्रोंने भी उसका अनुसरण किया। फिर उसके शेष पचास साथी भी भगवान्‌के अनुगत हुए। इस प्रकार साठ भिक्षुओंसे महान् बौद्ध संघका कार्य आरम्भ हुआ।

भद्र वर्गके लोग भगवान्‌की ओर मुग्ध भावसे आकर्षित होते जा रहे थे। जब भगवान् ऋषिपत्तनसे उरुवेला जा रहे थे तो तीस धनी युवाओंने भगवान्‌की शरण ली। भद्र इन युवाओंका प्रमुख था। इसीसे ये सब भद्रवर्गीय नामसे प्रसिद्ध हुए।

उरुवेलामें भगवान् पधारे तो अपने पाँच सौ जटिल अनुयायियोंके साथ ब्राह्मण कश्यप भगवान्‌की शरणमें गया। उसके अनुज नदी कश्यप और गया कश्यप भी अपने पाँच सौ अनुयायियोंके सहित भगवान्‌के अनुगत हुए। इन एक सहस्र अग्निहोत्री ब्राह्मणोंके आ मिलनेसे संघकी शक्ति और भी प्रखर हो उठी। जब भगवान् राजगृहमें विहार कर रहे थे तभी शारद्वतीका पुत्र सारिपुत्र और मोग्गली ब्राह्मणीका पुत्र मोग्गलायन संजय सम्प्रदायको विघटित कर अपने ढाई सौ शिष्योंके साथ भगवान्‌के शरणापन्न हुए। कश्यपके समान ही ये दोनों ब्राह्मण भी अत्यन्त मेधावी और पण्डित थे।

संघकी श्रीवृद्धिको न सह पाकर विरोधियोंने मगधमें दूषित प्रचार प्रारम्भ किया, 'अरे यह शाक्योंके गणराजाका पुत्र मगधकी राजशक्तिको छलसे दुर्बल करने आया है। इसपर भी

राजाने मुग्ध भावसे इसे वेलुवन उद्यान दानमें दे दिया। इसके सर्वनाशी प्रचारको किसीने न रोका, तो कोई स्त्री सुहागिन न रह जायेगी। सन्तानोंके अभावमें परिवार नष्ट हो जायेंगे। या वर्णसंकर जन्म लेकर पितरोंको नरकमें डालेंगे।'

पर इसपर भी भगवान्‌की विमल कीर्तिको कलंक नहीं लगा। जब भगवान्‌की उपलब्धियोंकी सूचना कपिलवस्तुमें राजा शुद्धो-दनके पास पहुँची तो वह अपने महान् पुत्रके दर्शनोंके लिए मचल उठा। उसने प्रजापतीसे कहा भी, 'देखो हमारा सिद्धार्थ अमिताभ हो उठा। भव तापसे पीड़ित जन उसकी शरणमें जाकर शान्ति पा रहे हैं। किन्तु मैं उसका पिता होकर भी असह्य दाह भोग रहा हूँ। बोलो गोतमी, मेरा पुत्र अपनी जन्मभूमिको कब सनाथ करेगा?'

प्रजापतीने ठीक ही परामर्श दिया, 'इसमें सोचकी क्या बात है राजन्! तथागतके पास संवाद भेजो। वह अवश्य आयेंगे। मेरी अपनी आँखें उसकी प्रतीक्षामें ज्योतिहीन हो चली हैं। यशोधराको और कुछ नहीं तो दर्शनोंका सौभाग्य तो मिलेगा। और हमारा राहुल भी अब काफ़ी बड़ा हुआ। अपने पिताके बारेमें नाना जिज्ञासाएँ करने लगा है। इस अबोधको भी पिताका बोध तो मिलेगा।'

और यथासमय राजा शुद्धोदनकी प्रार्थनापर भगवान् कपिलवस्तुमें पधारे। नगरके बाहर भगवान्‌ने संघसहित आवास किया। उनके आगमनका समाचार कपिलवस्तुके जन-जन तक बिजलीकी गतिसे पहुँच गया। राजा समाचार पाते ही चंचल हो उठा। प्रजापती बावली-सी भगवान्‌के आगमनकी सूचना उन सबको देती फिर रही थी, जो पहलेसे ही उससे अवगत थे। यदि

कोई उत्सुकताहीन और अचंचल थी तो गोपा। सबको उसकी धीरतापर अचरज हो रहा था। उसके अन्दर कितना भीषण तूफ़ान मचा था, यह तो जानने-सुननेका किसीको न तो धीरज था न समय। कुमार राहुल भगवान्के दर्शनोंकी उस धूममें भी माँके आँचलसे उसकी एकमात्र निधि-सा बँधा था। उसने माँकी शान्तिके रहस्यको जानते हुए ही जैसे पूछा था, 'अम्ब, इस चंचलतामें तुम इतनी शान्त क्यों हो? मन्त्रियोंसहित राजा कहाँ जा रहे हैं? मातामही गोतमीमें इतनी धूम मचानेकी शक्ति कहाँ से आ गयी? और तुम आँखोंमें आँसू भरे क्यों मूक बैठी हो?'

यशोधराने अपने लाड़लेको देखा और प्यारसे उसका माथा सूँघकर कहा, 'मेरे लाड़ले, इन सबके पास अब ऐसी कोई निधि नहीं जिसके खो जानेका भय हो। पर मैं अनेक बारकी वंचिता इसलिए घबरायी हूँ कि मेरी एकमात्र शेष निधि ही कोई मुझसे न छीन ले जाये। पुत्र, तुमने सुना ही होगा कि महाश्रमण पधारे हैं। उनमें कुछ ऐसा जादू है कि उन्हें देखते ही गृहपति संन्यासी हो जाते हैं। पत्नियोंके सुहाग चंचल हो उठते हैं। माताओंकी गोदें सूनी हो जाती हैं। और ये सब उस श्रमणकी निधि बन जाते हैं।'

राहुलने बेचैनीसे कहा, 'मैं नहीं समझा अम्ब!'

यशोधराने पीड़ासे भर कहा, 'तू समझनेकी चेष्टा भी न कर पुत्र!'

उधर राजा मन्त्री-वर्गसहित भगवान्के दर्शनोंके लिए उपस्थित हो चुका था। राजा भगवान्के दिव्य रूपको देखकर देखता ही रह गया। वाणी गूँगी हो गयी और मन मुखर हो

उठा, 'ओः, यही है मेरा पुत्र। सत्यधर्मी। निर्वाणका भोक्ता। बुद्ध। सम्बुद्ध। दिव्य आलोकसे मण्डित इस महान् पुरुषको कैसे अपना पुत्र कहूँ। कैसे अपना सिद्धार्थ कहकर पुकारूँ।'

राजाके मौनको भगवान् अपनी अमृत मुसकानसे अभिषिक्त कर रहे थे। उससे शक्ति पाकर राजाने उस सम्यक् सम्बुद्धका अभिवादन करके कहा, 'ओः, दीर्घकाल बीत चला। सात वर्ष। पूरे सात वर्ष। नहीं सात युग। हाँ सात युगोंसे ही मैं इस क्षण-की प्रतीक्षा कर रहा था, जब तुमसे कह सकूँ कि आओ और अपना यह राज्य सँभालो। पर मेरा ऐश्वर्य तेरे ऐश्वर्यके समक्ष तुच्छ है। मिथ्या है। तू उसे अंगीकार करनेवाला होता तो छोड़कर ही क्यों चला जाता। मेरा मन बार-बार कहता है कि तुझे पुत्र कहकर पुकारूँ। तूझे सिद्धार्थ कहकर बुलाऊँ। पर तू तो सचमुच ही अभिताभ हो उठा है। तू तो पितासे भी ऊँचे स्थानका स्वामी हो चुका है। श्रमण, महाश्रमण, मेरे पास तेरे लिए सम्बोधन नहीं। तेरे सान्निध्यमें मेरा मन ही बदल चला है।'

इसके बाद राजा राजभवन लौट आया था।''

गुहामें एकमात्र अहिरथका स्वर गूँज रहा था। नीचे बहती बाघ नदी भी जैसे उसीके स्वरको सुननेके लिए मौनमें स्थिर हो उठी थी। अहिरथने आगे कहा, 'अगले दिन भगवान् भिक्षा-पात्र ले पिण्डचारके लिए निकल पड़े। जिस कपिलवस्तुकी सड़कोंपर उन्होंने रथसे नीचे कभी पाँव तक न रखा था, उसीके मार्गोंपर

पैदल नंगे पाँव दीप्त भावसे संचरण कर रहे थे। भगवान्‌को देखकर मार्गमें जो जहाँ था वहीं स्तब्ध रह गया। अलिन्द स्त्री-बच्चोंसे भर गये। महाश्रमण भिक्षाटनके लिए निकले थे। हर कोई उनके भिक्षा-पात्रको रत्नोंसे भर डालनेको विकल था। श्रद्धा एवं कुतूहल-भरी दृष्टियोंके भारको वहन करते हुए महाश्रमण निर्मल दृष्टिसे भूमिकी ओर देखते, द्वारोंकी पंक्तियाँ छोड़ते हुए आगे बढ़ रहे थे। संवाद राजाके भवनमें भी पहुँचा। गोपा सुनकर चोट-सी खा उठी। उसका सुहाग न केवल भिक्षु हुआ, भिक्षाटनके लिए निकला भी तो उसीके नगरमें। कैसी अभागिन है वह, जो पतिसे प्यारके बदलेमें बार-बार अपमान ही पाती रही है।

राजाने सुना तो क्षुब्ध-सा दौड़कर राजद्वारके पाससे निकलते भगवान्‌के पास पहुँचा। राजाको आता देख भगवान् रुक गये। राजा क्षोभको छिपा न पाया था। उसने क्षुब्ध स्वरमें कहा, 'सुगत, तुम मेरे राज्यमें ही भिक्षाटन करके मुझे क्यों तिरस्कृत कर रहे हो। जिस राज्यके कण-कणपर तुम्हारा अधिकार है उसीकी भूमिमें इस वृद्धके जीते-जी तो यह सब न करो। तुम्हारे लिए मैंने अनेक दुःख भोगे हैं। पर यह दुःख अपमानका दुःख है, जिसे मैं सह न पाऊँगा।'

भगवान्‌ने शान्त स्वरमें उत्तर दिया था, 'राजा, मैं प्रव्रजित हूँ। भिक्षु हूँ। मैं न किसीका पिता हूँ न किसीका पुत्र। मैं सब सम्बन्धोंसे अतीत बुद्ध हूँ। अपमान मेरे परिवेशसे बाहरकी वस्तु है। भिक्षाचारके द्वारा मैं अपने ही धर्मका निर्वाह कर रहा हूँ। मैं कृषि नहीं करता। राजस्व नहीं लेता। धर्मके आचरणके लिए शरीरकी धारणा आवश्यक समझ भिक्षापर

निर्भर करता हूँ। राजा, जो भी मुझे भिक्षा देगा उसीकी भिक्षा मैं स्वीकार करूँगा। तुम भी यदि भिक्षा देना चाहो तो मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा। मुझे भिक्षा देकर तुम राजा और गृहपतिके धर्मका पालन करोगे। मैं भिक्षा लेकर भिक्षु धर्मका पालन करूँगा। मेरे लिए भिक्षाका अन्न ही खाद्य और पवित्रतम है राजन्! भिक्षाचार करके भिक्षु अपने अहंकारका विसर्जन करता है। यह अहंभाव मनुष्यकी धर्म-साधनाका सबसे बड़ा शत्रु है। भिक्षा देकर गृहपति अपने लोभको जीतता है। यह लोभ जीवनको निम्न गति देनेवाला है। राजन्, भिक्षु अहं-मुक्त हो और गृहपति लोभ-मुक्त तभी धर्मका पूर्ण साधन सम्भव है।'

राजाको प्रतिवादमें कुछ न सूझा। उसका क्षोभ शान्त हो गया। उसने विनम्र स्वरमें कहा, 'तो तथागत, मेरे भवनको पवित्र करें। मुझे भिक्षु-संघसहित भगवान्‌की भोजनसे तृप्ति करनेकी आज्ञा दें।'

भगवान्‌ने सारिपुत्त और मोग्गलायनसहित भवनमें प्रवेश किया। राजकुल और राजवर्गके सभी लोगोंने राज-भवनमें भगवान्‌का अभिनन्दन किया। किन्तु राहुल-माता यशोधरा अपने सूने कक्षमें ही अपनी पीड़ाको पोसती रही। उस समय कुमार राहुल भी कहीं अन्यत्र गया हुआ था। गोपाको वहाँ न देख भगवान्‌ने राजासे पूछा, 'देवी यशोधराके अतिरिक्त मैं शेष सभीको देख रहा हूँ राजन्, देवी कहाँ हैं?'

राजाने कहा, 'मैं आपका सन्देश अभी उस तक भेजता हूँ भगवान्! उसे भी आप दर्शनोंका सौभाग्य दें।'

भगवान्‌ने रोका, 'नहीं राजा, देवीको यहाँतक आनेका कष्ट

न दो। अपने इन दो प्रिय शिष्योंके सहित मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा।'

भगवान् सारिपुत्त, मोग्गलायनसहित गोपाके कक्षकी ओर चल दिये। परिचित मार्ग, परिचित भवन, परिचित ही कक्ष। किन्तु गोपा मिली सर्वथा अपरिचित-सी। दुःखकी मारी, लम्बे केश, सूखे उलझे निर्गन्ध। राजवधूकी मर्यादाके सर्वथा विपरीत मलिन वसन। उसने चमत्कृत होकर भगवान्को देखा। वह देखते ही असंयत हो उठी। किसीकी भी उपस्थिति उसपर बन्धन न डाल सकी। वह आँसुओंमें अपने मनकी व्यथाको उलीचती हुई भगवान्के चरणोंसे जा लिपटी। सारिपुत्त मोग्गलायन चमत्कृत थे। स्त्री भगवान्के देहका स्पर्श करे, उन्हें अजीब-सा लगा। पर भगवान्ने संकेतसे उनका समाधान किया। और फिर यशोधरासे स्नेह-सिक्त स्वरमें बोले, 'शान्त हो देवी! यह विगलन तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम इसी जन्ममें नहीं अनेक जन्मोंमें मेरी साधनाकी शक्ति रही हो। तुम्हारी पवित्रता, विनम्रता और भक्ति ही बोधिसत्त्वके रूपमें मुझे बुद्धत्व प्राप्तिकी ओर उन्मुख करती रही है। और तुम धर्ममें ऐसा अनुराग रखती रही कि तुमने हर पूर्व जन्ममें बुद्धकी पत्नी बननेकी कामना की है। देवी, अनेक जन्मोंके बाद तुम्हारी वह कामना पूरी हुई। अब इस क्लेश मलको छोड़ो और अपनी कामनाकी सार्थकतापर प्रसन्न होओ। बुद्ध आज तुम्हारे पास स्वयं इच्छा करके आया है! तुम इतनी शान्तिमयी सुखदायिनी हो कि तुम्हारे सान्निध्यसे जनके दुःख सुखमें बदल जायेंगे।''

कथा सुनती हुई सुनन्दाने अहिरथके मुखको देखा। क्षीण प्रकाशमें बैठे होनेके कारण वह उसके मुखके भावोंको ठीक न

पढ़ सकी। वह जानना चाहती थी कि अहिरथने जो कुछ कहा वह सब भगवान्के ही वचन थे जो उन्होंने गोपाके प्रति कहे या कि अहिरथ-जैसे पुरुषके, सुनन्दा-जैसी स्त्रीके प्रति शब्द-मायासे भरे। हाँ शब्द-माया। पुरुषकी शब्द-माया प्रबल है। सिद्धार्थने बुद्ध होकर भी क्या अपने पुत्रकी माताको नहीं छला ?

सुनन्दाके मानसी उद्वेलनसे अज्ञात अहिरथ अपनी कथा सुनाता रहा। सुनन्दा मशालसे कुछ ऐसे कोणपर बैठी थी कि उसकी अपनी बौनी छाया भी उसीके पास सिमटी पड़ी थी। भावकी दृष्टिसे दोनोंमें कौन अधिक सत्य थी, कहना कठिन था। आचार्य क्षण-भरको अपनी कथाको विराम देते तो समस्त शिल्पी-समुदाय छाया-चित्र-सा लगने लगता। अहिरथका स्वर ही उनकी प्राणवत्ताका द्योतक था। शिल्पी-समुदायकी परिधिके बाहर जहाँ मशालोंकी क्षीण शक्ति अन्धकारको परास्त नहीं कर पायी थी अँधेरा अचंचल था। व्यास-पीठसे अहिरथ कह रहा था, "भगवान्को कपिलवस्तुमें वास करते पूरे छह दिन बीत चुके थे और अब वह सातवाँ दिन था। इस अवधिमें भगवान्की शरणमें प्रजापतिका पुत्र नन्द भी जा चुका था। नन्दका शरणापन्न होना असाधारण घटना थी। नन्द दिव्य भोगोंमें पला था। विलासोंमें उसकी प्रवृत्ति सहज थी। वह सुन्दर, रसोंका ज्ञाता और कामिनी जनका आकर्षण था। जनपद कल्याणी अपने समयकी असाधारण सुन्दर स्त्री थी। उसके रूपकी एक झलक पानेके लिए सौन्दर्य-प्रेमी जाने कितनी लम्बी-लम्बी यात्राएँ दुर्गम मार्ग होनेपर भी तय कर डालते थे। वह नौका-विहार कर उद्यान-विहारके लिए निकलती तो ये सूचनाएँ नगर-भरमें बिजलीकी तरह फैल जातीं और रसिक-समाज उसके

रथको गतिको तीव्र रहने ही नहीं देता। नन्द उसका प्रणयी हुआ। उसने भी अनेक अभिलाषी युवकोंको निराश करके नन्दको ही परिणयकी स्वीकृति दी। वह दिन ज्योतिषियोंके अनुसार नन्दके जीवनका महान् दिन था। उसी दिन राजा शुद्धोदनने नन्दका युवराज्याभिषेक निश्चित किया था। पुत्रके बुद्ध हो जानेसे सर्वथा निराश राजाके सामने कोई विकल्प ही न था। राहुल बालक ही था। फिर नन्दको उन्होंने पुत्रका ही अनुराग जो दिया था! एक ओर तो भगवान्के भिक्षु-संघ-सहित पधारनेकी हलचल, दूसरी ओर नन्दका युवराज्याभिषेक और अनिन्द्य सुन्दरी जनपद कल्याणीसे परिणय। बस कपिल-वस्तुके नागरिकोंकी न पूछो। प्रत्येक उल्लसित, प्रत्येक व्यस्त। जैसे विश्व-भरके क्रिया-कलापकी धुरी उनका अपना यह नगर हो। नागरिकोंको इस बातका भी गर्व था कि उनके भावी राजाकी भार्या जनपद कल्याणी-जैसी असाधारण सुन्दरी होने जा रही है। माताएँ अपने पुत्रोंके प्रति अतिशय प्यारसे भर उठतीं तो कहतीं, 'पुत्र, तुझे जनपद कल्याणी-जैसी रूपवती भार्या मिले।' वे ही पुत्रियोंसे कहतीं, 'नन्द-जैसा पति पाना हो तो जनपद कल्याणी-जैसा रूप पाओ। उसके नेत्रोंमें नील कमल, कपोलों-में रक्त कमल और चरणोंमें हिरण्य कमल खिले रहते हैं। उसकी सुन्दर भुजाका आन्दोलन इन्द्रधनुषकी कोटिके लहरानेके सदृश है। उसकी वाणीमें रसके निर्झर हैं और गतिमें गयन्दों-का मद। वंशी सुननेकी इच्छा हो तो उससे बात-भर कर लो। आँखें दुख चली हों तो उसे देख-भर लो। वह मुसकरा दे तो कोई भी सन्तप्त न रह जाये। पुत्रि, वह दिव्य रूपवाली अंगना इन्द्रमें भी कामनाएँ जगानेमें समर्थ है। स्त्री हो तो जनपद कल्याणी सदृश।'

नन्दके आह्लादकी तो सीमा ही न थी। यौवराज्य उसकी उत्सुक प्रतीक्षा कर रहा था। सुन्दरी जनपद कल्याणी उसे समर्पित होनेको अधीर थी। उसका तेजस्वी भाई सिद्धार्थ अब बुद्ध होकर आया हुआ था। उसकी कल्पना सुखकी सीमाओंसे आगे जा ही नहीं पा रही थी। लगनकी शुभ घड़ीसे पूर्व उसके मनमें भगवान्के दर्शनोंकी इच्छा हुई। उनका आशीर्वाद लेकर क्यों न अपने भावी गृहस्थ-जीवनको धन्य करे। बस वह अश्वपर आरूढ़ हो, बिना सेवकोंके ही वहाँ जा पहुँचा। भगवान् भिक्षु-संघसहित विहार कर रहे थे। भगवान्ने नन्दको दूरसे आता देखकर अपने प्रिय शिष्यों सारिपुत्त और मोग्गलायनसे कहा, 'आयुष्मान्, देखो, उस सुरूप युवाको देखो। उसके मुखपर कैसी अद्‌भुत कान्ति है। आँखें उल्लासके कमल-सी खिली हैं। पर यह जिस जीवनको जी रहा है, उसमें सुख क्षणिक माया बनकर ही आया करता है। किन्तु इसने तो उस भरमानेवाली मायाको ही सत्य रूप जानकर पकड़ रखा है।'

उधर नन्द भगवान्के दिव्य रूपको देखकर सोच रहा था, 'मेरा बड़ा भाई सचमुच ही असाधारण है। मुख तेजपुंज-सा। चारों ओर प्रकाशका परिवेश धारण किये। कैसी अभंग शान्ति। पूर्णकाम। सब कुछको छोड़कर सब कुछकी प्राप्तिके सुखमें निमग्न-जैसा भाव। सचमुच ही उसकी साधना धन्य है।'

कुमार नन्दने समीप आकर भगवान्का अभिवादन किया और आशीर्वादकी याचना करते हुए कहा, 'भगवान्, आज मेरे जीवनका एक विशिष्ट अध्याय आरम्भ होने जा रहा है। राजाने मुझे यौवराज्य-पद देनेका निश्चय किया है, आज ही अभिषेक होगा।'

भगवान्‌ने सरल भावसे जिज्ञासा की, 'तुम आनन्दित हो नन्द ?'

'हाँ भगवन् !'

'तुम यौवराज्य-पदको असीम-सुखका सोपान मानते हो नन्द ?'

'....ऐसा ही है भगवान् !'

'....तुम राज्यशक्तिको सभी सुखोंके धारणमें समर्थ मानते हो आयुष्मान् ?'

'....हाँ सुगत !'

'पर तुमने कभी यह भी सोचा भद्र, कि यह राज्य-शक्ति भी नाशवान् है। भारत-भूमिमें अनेक विश्व-विश्रुत सम्राट् हुए हैं। अश्वमेध यज्ञोंसे जिन्होंने अपनी कीर्ति अमर की। पुराणोंमें जिनके राजसूय यज्ञोंकी रोचक गाथाएँ हैं। पर नन्द, क्या हुआ उन चक्रवर्तियोंको ? कहाँ हैं उनकी राजधानियाँ ? किस सत्ता-पर आरूढ़ है उनकी राज्यशक्ति ? उनके राज्यकी सीमाएँ क्या पानीपर बनी रेखाओंके सदृश नहीं मिट गयीं ?'

नन्द पराजित-सा भगवान्‌को आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। उसके मनमें भगवान्‌के वचनोंसे आतंक-सा छा गया। उसने विषय-परिवर्तन करते हुए कहा, 'भगवान्, मुझे आशीर्वाद दें। मेरे जीवनमें आज एक अन्य पर्व आ रहा है। मैं दिव्य सौन्दर्यवाली जनपद कल्याणीसे परिणय करने जा रहा हूँ। भगवान्‌ने जनपद कल्याणीके बारेमें सुना तो है न ? वह भगवान्‌के दर्शनोंके लिए भी कदाचित् आ चुकी है।'

भगवान्‌ने स्मितपूर्वक प्रश्न किया, 'तुम्हारी जनपद कल्याणी क्या सचमुच ही दिव्य सौन्दर्यवाली है नन्द ?

नन्दने उत्साहित होकर कहा, 'हाँ भगवान्, उसकी त्वचामें दुग्धफेन-सी स्निग्धता है। उसके सुहासमें चाँदनी-सी शीतलता है। उसके स्वरमें संगीतकी मधुर मूर्च्छनाएँ हैं। वह श्रेष्ठ आचरणवाली स्त्री है। उसका दर्शन परम सुख है। फिर उसे पाना तो जीवनकी चरम सार्थकता ही हुई भगवान्!'

भगवान्ने फिर प्रश्न किया, 'दिव्य क्या होता है नन्द?'

'वही, जो कुछ भी जनपद कल्याणीमें है', नन्दने कहा।

भगवान्ने फिर कहा, 'नन्द, दिव्य वह है जो कालसे सर्वथा अपराजित है। काल-रथके चक्र किसके जीवन-पथपर लीक नहीं बना पाते। मेरे प्रश्नोंका उत्तर दोगे नन्द?'

'आज्ञा करें भगवान्!'

'जनपद कल्याणीकी आयु क्या होगी?'

'वह बीस वसन्तोंकी श्रीसे सम्पन्न है भगवान्!'

'बीस वर्ष पूर्व वह कहाँ थी?'

'उसका जन्म भी नहीं हुआ था भगवान्!'

'और पन्द्रह वर्ष पूर्व?'

'स्थानका ज्ञान नहीं भगवान्! पर तब वह निश्चय ही अजान बालिका रही होगी।'

'और अबसे दस वर्ष पश्चात् सौम्य?'

'वह मेरी कीर्तिमती भार्या होगी। अपने ही सदृश सुन्दर सन्तानोंवाली और तब उसका रूप आषाढ़ी अमराई-सा और भी सघन हो उठा होगा।'

'और बीस वर्ष बाद?'

नन्दने बिना सोचे ही कहा, 'जो स्वर्ण आभा पक्वशालिपर खेलती है, वही तब उसके अंगोंपर विराजेगी। वह निश्चय ही स्वर्ण सीता-सी अभिनन्दनीय हो उठेगी।'

'....और तीस वर्ष पश्चात्? उस समय जब वह देवी प्रजापतीकी आयुको प्राप्त कर चुकेगी? जब उसके अंग शिथिल हो चलेंगे? जब दृष्टि थक चलेगी? जब गतिमें यौवन न रह जायेगा? जब उसकी वाणीकी वंशीको नित्य सुनते-सुनते अघा जाओगे? जब उसके नाग-से काले केश पलित हो चुके होंगे?'

नन्दने आतंकित भावसे चीत्कार-सा किया, 'भगवन्!' उसकी सुननेकी शक्ति परास्त हो चुकी थी।

भगवान्‌ने मधुर वाणीसे उसे आश्वस्त करते हुए कहा, 'उद्वेग न करो नन्द! मैं सत्यको पहचाननेमें तुम्हारी सहायता कर रहा हूँ। जिसे तुम दिव्य मानकर जिसके रूपकी अग्निमें अपने जीवनका सुख होम कर रहे हो, वह दिव्य नहीं। दिव्यकी छलना है। दिव्य सुख तुम तब पाओगे जब अर्हत् बनकर ब्रह्मविहारी हो उठोगे। तब सचमुच ही अक्षय यौवन ऋद्धियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। तुम सिद्धियोंके स्वामी होगे। जनपद कल्याणी ऋद्धि नहीं। वह सिद्धि नहीं। दिव्यका साक्षात्कार करना चाहते हो तो मेरे नेत्रोंमें देखो आयुष्मान्, उनकी कनीनिकाओंके मध्यसे तुम उस अवर्णनीय आकाशमें अवस्थित दिव्य आलोकको देखोगे। देखो नन्द, और देखकर बताओ कि तुम्हारी जनपद कल्याणी क्या सचमुच ही दिव्य है।'

नन्द भगवान्‌के नेत्रोंको देखनेका साहस ही नहीं कर सका। वह भगवान्‌के चरणोंमें साष्टांग लेट गया और विनय-भरे स्वरमें बोला, 'भगवन्, आपने मेरा मोह दूर किया। मैं विलासके

पंकमें फँसा नश्वर सुख-भोगोंको दिव्य मान बैठा था। आपने मुझे सत्यका प्रकाश दिखाया। मैं शरणागत हूँ भगवान्! मुझे शरणमें लेकर निर्वाणका पथ दर्शायें।

और कुछ ही क्षणोंमें समूचे कपिलवस्तुमें समाचार फैल गया कि नन्द प्रव्रजित हो गया। जनपद कल्याणीके रूपकी सार्थकता भी व्यर्थ सिद्ध हुई। यौवराज्यका आकर्षण भी झूठा सिद्ध हुआ। जनपद कल्याणीके रूपकी प्रशस्ति करनेवाली महिलाएँ भी अब ईर्ष्याजन्य सुख-तृप्तिका अनुभव करने लगीं। अनेक निराश युवाओंके मनमें पुनः आशाका संचार हुआ। पर जनपद कल्याणी लांछित प्रतिमा-भर बनकर रह गयी। एक श्रमणने उसके रूपको ऐसी व्यर्थता दी थी कि अब वह न तो किसी युवाकी प्रशंसा-भरी दृष्टिको सह पायेगी और न अपनी रूपकी रश्मिसे आलोकित हुए दर्पणका ही साक्षात्कार कर पायेगी।

नन्दमाता गोतमीने सुना तो उस जलधारा-सी हो गयी जो अचानक ही जमकर बरफ़ बन गयी हो। सिद्धार्थको उसने नन्द-से अधिक प्यार किया था। उसके प्रव्रजनको स्वीकार कर चुकी थी, पर नन्दकी प्रव्रज्याने जैसे उसके उस घावको फिरसे ताज़ा कर दिया था।

और राजाने सुना तो मणि-लुटे फणि-सा बेचैन अपने कक्षमें डोलने लगा। उसे अपनी वंशपरम्पराका अन्त ही दीख रहा था। उसके वक्षपर जैसे सहसा अनेक वज्र एक साथ टूट पड़े थे। यह पीड़ित मनसे सोच-सोचकर परास्त-सा हो जाता, जब उसे शाक्य-कुलके उत्तराधिकारियोंके इन नये संकल्पोंका ध्यान आता। सिद्धार्थके अभिनिष्क्रमणपर वह नन्दको देखकर ही तो

जी रहा था। किन्तु अब ? वह वृद्ध हुआ। राहुल अबोध शिशु। कबतक इन आघातोंको सहता हुआ राज्यके इस बोझको अपने जरा-जीर्ण कन्धोंपर उठाता फिरेगा ? सिद्धार्थ बुद्ध होकर इस सब कुछमें कौन-सा हित देख रहा है ? राजा आर्त्त होकर पुकार उठा, 'हे भगवान् !'

देवी गोपाने भी सुना। क्षण-भरको वे अवरुद्ध जलधारा-सी लगीं, फिर दूसरे ही क्षण किसी निश्चयसे भरकर शान्त हो उठीं। राहुलको पुकारा, 'राहुल !'

सप्तवर्षीय शिशु पास ही था। दौड़ा-दौड़ा आया, 'आज्ञा, अम्ब !'

गोपाने वेदना-बिद्ध प्यार-भरे स्वरमें कहा, पुत्र, 'तू अभागा ही रहा। आज तक तू अपने पिताके उत्तराधिकारसे वंचित ही रहा। तूने अभीतक नहीं देखा उन्हें। वे जो कपिलवस्तुकी सीमापर भिक्षु-संघसहित विहार कर रहे हैं। वे जिनकी दासता सुनते हैं शक्रने भी स्वीकार कर ली है। वे जो साक्षात् ब्रह्माके समान दिव्य हैं। वे ही तेरे पिता हैं।'

राहुलने शंका की, 'मेरे पिता वे हैं अम्ब ? मैं तो राजाको ही पिता जानता हूँ।'

अम्बने समझाया, 'राजा पितामह हैं तात। उनसे तुझे पिताका संरक्षण और स्नेह अवश्य मिला है। पर तुझे इस लोकमें लानेवाले तेरे पिता वे ही महाश्रमण हैं।'

राहुल अचरज-भरी आँखोंसे अम्बको देखता रहा। अम्ब उसके मुखको विकलतासे निहारती कहती रही, 'पुत्र, वे ही यशस्वी तेरे पिता हैं। मैं स्वयं तो नहीं जानती, पर जाननेवालों-से सुना है कि उनके पास अक्षय निधियोंकी चार-चार खाने

हैं। आ पुत्र, मैं तेरा राजकुमारोंके मनोहर वेषमें जी-भरकर शृंगार कर लूँ और तब तू अपने पिताके पास जाना, और कहना कि महाश्रमण, मैं तेरा पुत्र हूँ। मुझे मेरा उत्तराधिकार दे।'

कहते-कहते अम्बका गला भर आया था और साथ ही कोई छलिया आँसू आँखके कोनेसे कपोलपर ढुलक पड़ा था। पुत्रसे उस आँसूको छिपानेके लिए अम्ब तत्काल विपरीत दिशामें देखने लगी थी। फिर वह दूसरे कक्षमें गयी। कुमारके राजसी वस्त्र और अलंकार लायी। दासियोंके रहनेपर भी उसने स्वयं ही पुत्रका शृंगार किया और जैसे ही पुत्रको सजा-सँवार चुकी, उसे भिक्षाटनके लिए निकले भिक्षु-संघका घोष सुनाई दिया। अम्ब पुत्रसहित वातायनके समीप आयी। समीप ही भिक्षु-संघका नमन करते हुए भगवान् दिखाई दिये। अम्बने पुत्रको दिखाते हुए कहा, 'देख पुत्र, उस पवित्रात्माको देख। भिक्षु-संघकी पृष्ठभूमिमें वह महान् आत्मा तारोंको ज्योतिहीन करनेवाले चन्द्रमाके सदृश दीप्तिमान् है। पुत्र, जल्दी शीघ्रता कर। जा और अपना उत्तराधिकार माँग।'

देवी गोपा वातायनके सहारे ही खड़ी रहीं। कुमार राहुल दौड़ा-दौड़ा बाहर आया। भगवान् वातायनके और समीप आ चुके थे। गोपाकी अश्रुओंसे धूमिल दृष्टि भी उन्हें स्पष्ट देख सकती थी। दूसरे ही क्षण देवी गोपाने देखा, कुमार भगवान्के मार्गमें आ खड़ा था। उसने निर्भय सिंहशावकके समान भगवान्के तेजोमय मुख-मण्डलको अपलक देखते हुए स्नेहिल स्वरमें पुकारा, 'मेरे तात!'

भगवान् करुणासे भरकर मुसकराये। उस मुसकानकी अमृत-वर्षामें अभूतपूर्व तृप्ति और बोधका अनुभव करते हुए

कुमारने कहा था, 'तात, तुम्हारे सान्निध्यमें कितनी शान्ति है। तुम्हारी छाया भी कैसी आशीर्वाद भरी है।'

भगवान्‌ने सुना और आशीर्वाद देकर आगे बढ़ जाना चाहा। किन्तु कुमारने मार्ग न दिया। निर्भीक स्वरमें कहा, तात, अम्ब कहती हैं कि तुम अक्षय निधियोंके स्वामी हो। मुझे मेरा उत्तराधिकार देकर कृतार्थ करें।'

भगवान् किंचित् गम्भीर हुए। फिर सारिपुत्तकी ओर उन्मुख होकर बोले, 'सुना आयुष्मान्, तुमने। मेरा पुत्र मुझसे उत्तराधिकार माँग रहा है। मैं इसे उत्तराधिकारमें ऐसी क्षयशील सम्पदाएँ नहीं दे सकता जो दुःख और तापकी वाहिकाएँ हैं। मैं इसे पवित्र जीवनका ही उत्तराधिकार दे सकता हूँ। यही एक ऐसी निधि है जो अक्षय है।'

और तब भगवान्‌ने राहुलकी ओर देखकर कहा था, 'आयुष्मान्, रजत स्वर्ण या रत्न मेरे पास नहीं। किन्तु यदि तुम दिव्य धन पाना चाहते हो और तुममें इतनी क्षमता है कि उस दिव्य धनको वहन करते हुए उसकी रक्षा कर सको तो मैं तुम्हें उन चार आर्य सत्योंका साक्षात्कार कराऊँगा जो तुम्हें आर्य अष्टांगिक मार्गमें प्रवृत्त करेंगे। बोलो सौम्य, क्या तुम उस जीवनको समर्पित होना चाहोगे जो मनकी मुक्ति और दिव्य निधियोंका अभिलाषी है?'

गोपा सुन रही थी। गोपा देख रही थी। उसके मनमें आशंकाएँ आन्दोलित हो रही थीं। वह राहुलके उत्तरमें निमिष-भरके विलम्बको सह न पा रही थी। और तभी उसने राहुलको कहते सुना, 'तात, मुझे उसी जीवनका आशीर्वाद दें। मैं आपकी ही शरण हूँ।'

और देवी गोपाको लगा था कि शिशु राहुल कुछ-कुछ अपने पिता सदृश ही दीर्घकाय, वयप्राप्त तेजस्वी और दिव्य धनसे युक्त हो उठा है। किन्तु वह स्वयं सर्वथा कंगाल ही रही। उसकी माँगका सिन्दूर वैरागी हो उठा। उसकी गोदका उल्लास वीतरागीके पथपर चल पड़ा। वह रह गयी सर्वहारा। महान् पतिकी भार्या। महान् पुत्रकी अम्ब। पर स्वयंमें रिक्त, शून्य। न सिरपर आकाश, न चरणोंमें धरती। अधरमें निलम्बित।

इधर भगवान् बुद्ध कह रहे थे, सारिपुत्त, निर्मल बुद्धिवाला है यह कुमार। मैं इसे इसी क्षण, इसी भूमिमें दीक्षित करूँगा। मैं इसे चार आर्य सत्योंसे समन्वित करता हूँ। मैं इसे त्रिरत्न-की शरणमें लेता हूँ। यह इसी क्षणसे बुद्धका हुआ, धर्मका हुआ, संघका हुआ।'

राहुल माताके अभियोग-शून्य दृष्टिसे देखते-देखते भगवान्ने राहुलको अपने धर्ममें दीक्षित कर लिया। दीक्षित कर बोले, 'आयुष्मान्, श्रामणेरके मार्ग-दर्शनके लिए इन शिक्षापदोंको धारण करो। ये सच्चे सखा और गुरुके सदृश तुम्हारे सहायक रहेंगे।'

और तब भगवान्की ध्वनिको प्रतिध्वनित करते हुए राहुलने कहा :

'मैं जीव-हिंसासे विरत रहनेका व्रत लेता हूँ।
मैं चोरीसे विरत रहनेका व्रत लेता हूँ।
मैं अब्रह्मचर्यसे विरत रहनेका व्रत लेता हूँ।
मैं असत्य भाषणसे विरत रहनेका व्रत लेता हूँ।
मैं मादक द्रव्योंसे विरत रहनेका व्रत लेता हूँ।
मैं असमय आहारसे विरत रहनेका व्रत लेता हूँ।

मैं नृत्य-गान, अश्लील हाव-भावके दर्शनसे विरत रहनेका व्रत लेता हूँ।

मैं माला-गन्धादिके सेवनसे विरत रहनेका व्रत लेता हूँ।

मैं अलंकृत ऊँचे पर्यंकोंपर सोनेसे विरत होनेका व्रत लेता हूँ।

मैं स्वर्ण-रजतको ग्रहण करनेसे विरत होनेका व्रत लेता हूँ।'

जो कुछ भी इस लोकका भोग था, इस लोकका ऐश्वर्य था उस सबसे विरत होनेका पुत्रने व्रत ले लिया और अम्ब देखती रही। अम्ब जिन विलासोंसे अपने पुत्रोंके यौवनको सार्थक करना चाहती है वे राहुलके शैशवमें ही उससे छिन गये।

देवी गोपाने सुना। भगवान् उपदेश कर रहे थे, "आयुष्मान्, मैं जो इस क्षण कह रहा हूँ, सम्यक् ध्यानके साथ अवधारणा कर।'

'जीवोंमें दण्ड त्याग, त्याग सन्त्रासको, कामनासे मुक्त मित्र-पुत्रकी, विचरण करे एकाकी खड्ग विषाण सदृश। त्याग राग द्वेष मोह, मुक्त हो बन्धनोंसे, मृत्युसे निर्भीक, विचरण करे एकाकी प्रबल गैंडेके सींग-सा।'

दर्शकोंको लग रहा था जैसे भगवान्के देहकी दिव्य किरणें राहुलके शरीरमें प्रविष्ट होकर उसे असाधारण तेजसे मण्डित कर रही हैं। भगवान् कह रहे थे, 'आयुष्मान्, तू ब्रह्मविहारी हो जा। जानता है सौम्य, ब्रह्मविहार क्या है? किसीका काम न बिगाड़े, किसीको नीचा न समझे, क्रोध न करे, अनिष्ट न चाहे, जिस प्रकार माता अपने एकाकी पुत्रकी रक्षा प्राण देकर भी करती है, उसी भावसे जीवन-मात्रकी रक्षा करे। आयुष्मान्, सतत और सर्वथा प्रेमका प्रसार करे। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-रुकते, सदा इसी भावमें विहार करे। इसीको ब्रह्मविहार

कहते हैं। इसीकी साधनासे बार-बार गर्भ-क्लेशसे मुक्ति सम्भव है।'

एक माँ सुन रही थी कैसे एक श्रमण उस माँकी अकेली सन्तानको अपने धर्ममें दीक्षा देते हुए माँके निर्मल प्रेमकी उपमाके द्वारा उसे अपने धर्मका मर्म समझा रहा था। कैसा व्यंग्य था। देवी गोपा रो उठीं।

शुद्धोदन शाक्य तक भी यह समाचार पहुँचते देर न लगी। उससे रहा न गया। वह धीरज छोड़कर अपने पद और बुढ़ापेको भूल दौड़ा-दौड़ा भगवान्‌के समीप आया। राजा अपनी वयसे भी कहीं अधिक वृद्ध लग रहा था। सफ़ेद बाल सफ़ेद दाढ़ी। भौं तकके बाल सफ़ेद। सफ़ेद आँखोंमें तिरता हुआ पानी भी कुछ वैसा ही। जंगलमें आग धधकती है तो रक्त जिह्वाओंको लपलपाकर। अगर हज़ारों-हज़ार बिजलियाँ एक साथ धधक उठें तो वह शुद्धोदन होगा। उसके शरीरका एक-एक रोम वन-दावाओंको जन्म देता हुआ बिजली-सा तड़प रहा था। उसने किसी प्रकार स्वयंको संयममें रखकर कहा, 'भगवान्, मुझे वर दें।'

पुत्र जो भगवान् बन चुका था पितासे बोला, 'राजा, तथागत वरसे ऊपर उठ चुके हैं।'

शुद्धोदनने अनुनय की, 'मेरे वरमें कोई दोष नहीं भन्ते, मैं वही माँगूँगा जो उचित होगा।'

भगवान् वरकी सीमामें बँध गये। शुद्धोदनने हाहाकारके स्वरोंमें कहा, 'नहीं जानते भगवान् कि जब आप प्रव्रजित हुए थे तो मुझे कितना दुःख हुआ था। जब जनपद कल्याणी-सी सुन्दरीका तिरस्कार कर नन्दने भी प्रव्रज्या ले ली थी तो मैं

कितना पीड़ित हुआ था। पर अब अबोध राहुलके प्रव्रजित होनेपर तो मेरे दुःखकी सीमा ही न रही। भन्ते, पुत्र-प्रेम मेरी त्वचाको छेद रहा है, माँसको नोच रहा है। मेरी नस-नसको चीर रहा है। मेरी हड्डियोंको टूक-टूक कर रहा है। मेरी पीड़ा समझें तथागत! भगवन्, यह वचन तो मुझे दे ही दें कि माता-पिताकी अनुमतिके विना किसीको प्रव्रजित न करेंगे।'

भगवान्ने 'तथास्तु' कह वर दे दिया। पर राहुल तो प्रव्रजित हो ही गया। शुद्धोदन तो सर्वथा निष्पुत्र हो ही गया। गोपाकी गोदका उल्लास तो चला ही गया।

भगवान् भी फिर कपिलवस्तुसे चल दिये। कपिलवस्तुके राजगृहके मार्गमें शाक्य राजाओंमें-से भद्रिक उनकी शरणमें आया। दार्शनिक अनुरुद्ध, मल्ल कुमार आनन्द, नापित उपालि और चचेरा भाई देवदत्त भी शरणापन्न हुआ। भगवान्ने इन सबको अनुपियमें दीक्षा दी।"

कथा कहते-कहते आचार्य अहिरथ थक चले थे। रात्रि ब्राह्म मुहूर्त्तके समीप जा पहुँची थी। उसके सघन केशोंसे निकलती अन्धकारकी किरणें अपना तेज खोने लगी थीं। शिल्पी-संघ बिखरकर अनेक गुहाओंमें समा गया था। उस गुहामें मात्र सुनन्दा और आचार्य रह गये थे। आचार्यने कहा, "देवि, अब तुम भी विश्राम करो। रात्रि अवसानपर है।"

सुनन्दा अचानक कह उठी, "रात्रि जागरणके लिए क्यों नहीं? दिवस विश्रामके लिए क्यों नहीं?"

आचार्यने चकित भावसे पूछा, "यह कौन-सी पहेली है आयुष्मति!"

सुनन्दाने मधुर स्वरको तीक्ष्ण करके कहा, "एक सामान्य-सी बात कही आचार्य, जब अबोध बालकको प्रव्रजित किया जा सकता है तो रात क्यों नहीं जागरणके लिए हो सकती ? दिन क्यों नहीं शयनकी वेला बन सकता ? जब वय-कालकी मर्यादाएँ तोड़ी जा सकती हैं तो········"

सुनन्दा स्वयं चुप हो गयी थी। विशाल गुहा। ढेर-सा अन्धकार। कुछ बिखरी हुई मशालें। अपने अभियोगोंमें और भी आकर्षक सुनन्दा। अतिचिन्तनाके कारण असमयमें वार्द्धक्यकी गम्भीरतासे पूर्ण अहिरथ। विपरीत दिशाओंमें दौड़ते हुए दोनोंके मन। तभी सुनन्दाने कहा, "आचार्य, अब मैं अपनी कल्पनाके चित्रको प्रस्तुत कर सकूँगी। प्रेरणाका जो स्फुलिंग आपने मुझे दिया उसे वह्निरूप करके मैं ज्वाला-भरे रंगोंमें उस क्षणको अंकित करूँगी जब गोपा सर्वहारा हो उठी थी। जब राहुलका आत्मनिर्णयका अधिकार छिन चुका था। जब भगवान् और भी निर्मम हो उठे थे। जब········"

आचार्यने सुनन्दाको रोक लिया, "शान्त आयुष्मति, शान्त। कला दाह नहीं देती। कला प्लावन भी नहीं करती। प्रेरणाके स्फुलिंग मार्गदर्शक ज्योतिसे होते हैं। उनमें सृष्टिका बीज होता है। बड़वा-जैसे समुद्रकी जल-शक्तियोंका भोग करती है, उसी प्रकार कलाकारके आवेगोंकी ज्वाला स्वयं उसकी अपनी सृजन-शक्तियोंका। और तब बड़वा जलमय और कलाकारके मनकी आग सृजनमय हो उठती है। तुम्हारी ज्वालाका अभी परिपाक नहीं हुआ। अभी वह सृजनमयी नहीं हुई। अभी धीरजसे काम लो। जब उपयुक्त घड़ी आयेगी तो तुम मुझसे पूछे बिना, वैसी कोई घोषणा किये बिना, अपने निर्माणमें लग जाओगी। फिर

राहुलकी कथा अभी शेष है। मुझे उसके अन्त तक तो पहुँचने दो। अभी तो तुमने उसका आरम्भ-मात्र सुना।''

सुनन्दा चली गयी। आचार्य गुहामें ही रह गये। जैसे बाघ नदी रात्रिमें सोते-सोते भी प्रवहमान थी उसी प्रकार ऊपरसे शान्त हो चली सुनन्दाका मन भीतरसे निरन्तर अशान्त था। उस रात वह सो न पायी। अगली सन्ध्याको जब शिल्पी-संघ कथा श्रवणके लिए एकत्र हुआ तो सुनन्दा सबसे पहले वहाँ उपस्थित थी। उसने रात्रि-जागरणसे जलती हुई भारी आँखोंको उठाकर आचार्यका मूक स्वागत किया और फिर जैसे उन आँखों-की ज्वालाके बाह्य प्रसारको रोकनेके लिए ही जलती हुई पुत-लियोंपर पलकोंका आवरण रख दिया। अहिरथने देखा। उसे उप-निषद्का वाक्य याद आया—हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं—सत्य ज्वालाकी भाँति धधक रहा है। अन्य दृष्टियाँ उसका साक्षात्कार नहीं कर पायेंगी। इसीसे उसपर हिरण्यमय पात्रको रख दिया। सुनन्दाकी आँखें सत्यमयी ज्वाला-सी। सुनन्दाकी पलकें हिरण्यमय पात्र-सी। अब अहिरथ सुनन्दाके मुखकी ओर देख सकता था।

अहिरथने आसन ग्रहण कर कथा प्रारम्भ की, ''अब मैं आगेकी कथा सुनाता हूँ। आयुष्मान् राहुल भिक्षु-संघके सबसे अल्प आयुवाले श्रमण थे। भगवान्की छायामें वे भी चारिका करते और अपने भीतरके सत्यकी अग्निको प्रवृद्ध करते। किन्तु फिर भी वे विकल्पोंसे विरहित न थे। माँ गोपाकी स्मृति उनके समस्त बोधके ऊपर थी। मन शंकाएँ नहीं छोड़ पाया था। उस अल्प आयुमें भी तर्ककी तीक्ष्णता उन्हें अशान्त किये रखती। भिक्षु-संघमें सर्वत्र सुदत्तके महादानकी चर्चा थी। कोशल देशकी

श्रावस्तीका प्रसिद्ध श्रेष्ठी सुदत्त। जिसे दानमें ही सुख मिलता। जिसका कोई सहारा नहीं उसका सुदत्त। इसीसे उसे सुदत्त नामसे कम, किन्तु अनाथपिण्डक नामसे अधिक स्मरण किया जाता। सुदत्तके मूल नाममें दानका सुन्दर भाव था। किन्तु अनाथोंको पिण्ड देनेवाला कुछ विशिष्ट ही था। जब भगवान् राजगृहके सीतवनमें ठहरे थे, तो श्रेष्ठी सुदत्त अपनी बहनके पास राजगृह आया हुआ था। उसकी महिमामयी बहन राजगृहके श्रेष्ठीकी पत्नी थी। उसने भिक्षु-संघसहित भगवान्का सत्कार किया। सुदत्तने तब शास्ताकी महिमाका अनुभव किया। उसने भगवान्से दीक्षा ले अपने जीवनको धन्य किया। और तभी उसके मनमें आया कि अपनी श्रावस्तीमें ही सीतवनसे भी रमणीक विहारका निर्माण करे, जहाँ भगवान् आकर भिक्षु-संघसहित विहार करें।

सुदत्त जब अपनी नगरी लौटा तो उसे विहार-निर्माणके लिए राजकुमार जेतका उद्यान ही पसन्द आया। विस्तृत जल-स्रोतों और वनस्पतियोंसे आपूर्ण। महान् वृक्षोंकी छायाओंसे सम्पन्न। उसने राजकुमार जेतसे प्रार्थना की कि उद्यानको भगवान्के कार्यके लिए बेच दे। राजकुमारने अनिच्छा प्रकट की तो सुदत्तने कहा, 'कुमार, मुझे निराश न करें। जितना धन आप चाहेंगे मैं दूँगा।'

कुमारने कह दिया, 'तो समस्त उद्यानको सुवर्ण मुद्राओंसे पाट दो। बस भूमि तुम्हारी होगी, स्वर्ण मेरा।'

सुदत्तने कृतार्थ भावसे स्वीकार कर लिया। शकटोंमें लद-लदकर सुवर्ण-मुद्राएँ आने लगीं। जेतके आश्चर्यकी सीमा न रही जब श्रेष्ठीने परम आनन्दके भावसे उतनी स्वर्ण-राशि देकर

उस उद्यानको पा लिया।

सुदत्तके इस महान् त्यागसे कुमार जेतको लगा कि श्रेष्ठीने उस उद्यानको खरीदकर उससे भगवान्की सेवाका अधिकार छीन लिया। उसने कहा, 'सुदत्त श्रेष्ठी, भूमि तुम्हारी हुई, किन्तु ये वृक्ष मेरे हैं। इनका दान मैं स्वयं भगवान्को करूँगा। और भूमिकी सीमापर जहाँ तुम्हारे अधिकारकी सीमा है मैं भगवान्की अगवानीके लिए सुन्दर तोरण-द्वार बनाऊँगा और भगवान्को पावस-वासमें कष्ट न हो, इसलिए मैं तुमसे तुम्हारी ही भूमिपर एक भण्डार बनानेकी आज्ञा चाहता हूँ।'

दानी सुदत्तने कहा, "ऐसा ही हो राजकुमार, दानकी सीमाएँ अनन्त हैं। इसके द्वार सबके लिए मुक्त हैं। मैं विहारका निर्माण करूँगा, पर कुमार मेरा यह बिहार तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा।'

अपनी इस उदारतासे श्रेष्ठीने राजकुमार जेतको ही जैसे खरीद लिया। फिर दोनोंने प्रसन्न भावसे उस आयोजनको बढ़ाया। विहारका निर्माण पूरा हुआ। और तब सुदत्तने भगवान्को आमन्त्रित किया कि आकर उसके विनम्रदानको स्वीकार करें।

कपिलवस्तुसे भगबान् श्रावस्ती पधारे। श्रेष्ठीने भगवान्के मार्गको फूलोंसे ढककर उनका स्वागत किया। सर्वत्र गन्धकी धूम थी। और अन्तमें उसने स्वर्णपात्रसे जल छोड़कर दानका संकल्प किया। भगवान्ने कोशल भूमि, उसके राजा और इस दानके दाता सभीको आशीर्वाद दिया। कोशलके राजा प्रसेनजित्ने सुना तो पूरे राजकीय समारोहके साथ दर्शनोंके लिए आया। भगवान्ने राजा, श्रेष्ठी, कुमार जेत तथा भिक्षु-संघसहित

उपस्थित सभी जनोंको उपदेश करते हुए कहा, 'सत्य केवल श्रमणका ही दायज नहीं। सत्य ब्राह्मणसे लेकर सामान्य जन तकके लिए है। प्रव्रजित और गृहीमें कोई अन्तर नहीं। प्रव्रजित होकर भी लोग आसक्तियोंमें फँस जाते हैं, जब कि कुछ विनयी गृहपति ऋषिपदको पा लेते हैं। भोगोंमें प्रवृत्ति सभीके लिए घातक है। इसीसे आवश्यक है कि धर्मका आचरण कर मार-जित बनो। आयुष्मान्, ऐसे भी मार्ग हैं जो अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले जाते हैं। ऐसे भी मार्ग हैं जो अन्धकारसे और भी गहरे अन्धकारकी ओर ले जाते हैं। ऐसे भी मार्ग हैं जो प्रकाशके उदयकी वेलासे उसके पूर्णोदयकी वेलाकी ओर ले जाते हैं। इन नाशवान् पदार्थोंके सच्चे स्वरूपको जानकर अभ्युदयके मार्गकी ओर अग्रसर होओ।'

जब राजा और श्रेष्ठीसहित सब जन चले गये तो भिक्षुओंने भगवान्से श्रेष्ठीके दानकी फिरसे प्रशंसा प्रारम्भ की। एक भिक्षु-ने कहा, 'शास्ता, सुदत्तकी दृष्टि निर्मल है। स्वर्णकी माया भी उसे धूमिल न कर सकी। उसने अठारह कोटि कार्षापण ठीकरों-से ठुकरा दिये।

भगवान्ने अनुभव किया कि उस प्रशंसामें भी भिक्षुके मन-में कुछ विशेष ही आसक्ति थी। स्वर्णका लोभ उसे चमत्कृत किये था। उतने सुवर्णकी चर्चा करके वह जिस सुखका अनुभव कर रहा था, वह सुवर्णके प्रति अभीतक बनी आसक्तिका द्योतक था। तब भगवान्ने भिक्षुओंको लोभसे विमुख करनेके लिए उत्तम उपदेश दिया और उपदेशके अन्तमें कहा, 'भिक्षुओ, तुम लोभ त्याग दो। मैं तुम्हें अनागामि-पदका विश्वास दिलाता हूँ। लोभ आनेवाले जन्मोंमें आसक्ति उपजाता है। जो भविष्यत्

जन्मोंसे विरक्त हो चले हैं, वे फिर भवकी मायामें नहीं पड़ते। उनका बीज-भाव चला जाता है।'

राहुलने भी सुना। उसकी समझमें आ ही नहीं रहा था कि भगवान्‌का यह आश्वासन क्या लोभ नहीं। उस अनागामि-पद-का लोभ दिलाकर ही तो भगवान् उन्हें इस लोभसे विमुख कर रहे हैं। और ये भवनोंसे भी विशाल विहार, स्वर्ण-पात्रकी जलधारामें छोड़े गये संकल्प, भगवान्‌का स्वीकार, यह सब क्या है? गृहीसे भिक्षु हुए, किन्तु सुवर्णकी माया कहाँ छूटी। ये विहार नामके भवन, ये पत्तलोंमें लिये गये दिव्य भोज।

ऐसी ही अनेक शंकाओंके मार्गसे राहुलका तर्क बढ़ चला और बढ़ता ही जाता यदि भगवान्‌ने उसे पुकारकर आकृष्ट न कर दिया होता।

भगवान् जेतवन विहारकी करेही कुटीमें विहार कर रहे थे। सुदत्त श्रेष्ठीकी भार्याके अनुरोधपर भगवान्‌ने स्वीकार कर लिया था कि वे श्रावस्तीकी कुलांगनाओंको सन्ध्या समय अपने उप-देशसे कृतार्थ करेंगे। उसी प्रसंगमें सारिपुत्रने कुछ प्रमुख भिक्षुओंसहित निवेदन किया, 'भगवान्, आज विहारमें स्त्रियाँ समूह-बद्ध होकर आयेंगी। स्त्रियाँ इससे पूर्व भी भगवान्‌के आशीर्वादके लिए आती रही हैं। नगरमें जब हम पिण्डचारके लिए निकलते हैं तो भिक्षा दान करनेवालोंमें स्त्रियाँ ही अग्रणी होती हैं। भगवान् हमें उपदेश करें कि प्रव्रज्या ले चुकनेपर एक श्रमणका स्त्रीके प्रति कैसा भाव-व्यवहार हो।'

तब राहुल भी उपस्थित थे। भगवान्‌ने भिक्षुओंको कोमल दृष्टिसे देखकर कहा, 'भिक्षुओ, तथागतका आदेश है कि अपने दृष्टिपथमें स्त्रियोंको आने ही न दो। यदि स्त्रीको देखा भी हो

तो यही अनुभूति करो कि तुमने उसे देखा ही नहीं। यदि तुम्हें स्त्रीके साथ वाणीका व्यवहार करना भी पड़े तो उस क्षण जलमें कमलवत् ही बने रहो। यदि स्त्री वृद्ध हो तो उसे माता समझो और तरुणी हो तो स्वसा। बालिका हो तो पुत्रीवत् व्यवहार करो।'

राहुल उपदेश सुन रहा था। उसे वृद्ध प्रजापती स्मरण आयी। वार्द्धक्यसे दूर ही बैठी माँ गोपा स्मरण आयी। अपने साथ खेलनेवाली दासीपुत्री अनघा स्मरण आयी। उसकी समझमें आ ही नहीं रहा था कि इन सबके सम्पर्कमें क्या पाप है। भिक्षु, ऐसा प्रश्न क्यों कर रहे हैं। भगवान् ऐसा उपदेश क्यों दे रहे हैं?

उधर भगवान् धर्मदेशना कर रहे थे, 'भिक्षुओ, यदि कोई श्रमण किसी स्त्रीको स्त्री-भावसे छूता है तो वह धर्मभ्रष्ट हुआ। वह तथागतका अनुयायी नहीं रहा। स्त्रीका सौन्दर्य पुरुषकी दृष्टिको दिग्भ्रमित कर देता है। स्त्रीके सौन्दर्यका पान करनेसे तो उत्तम है कि अपनी आँखोंको लोहेकी गरम शलाकाओंसे बिद्ध करके अन्धी बना लो। स्त्री-संगमें वासनाओंको प्रखर करनेसे उत्तम है कि भूखे सिंहका आहार बन जाओ या बधिकके खड्ग-का ही आलिंगन कर लो। ये संसारी स्त्रियाँ मायाकी पुत्रियाँ हैं। ये अपने अंगोंके सौष्ठव प्रदर्शनमें ही उठते-बैठते जागते-सोते व्यस्त रहती हैं। चित्र रूपमें भी स्त्री मायाविनी है। पुरुष-को साधना-पथसे विरत करती है। भिक्षुओ, तुम ऐसी माया-विनी स्त्रीसे तभीतक सुरक्षित हो जबतक कि तुम उसके आँसुओं और मुसकानोंको अपना शत्रु मानते हो और अपने ऊपर झुकी हुई उसकी देह-यष्टि, फैली हुई भुजाओं और लहराते केशोंको

मारके फन्देके रूपमें देखते हो। इसीसे मैं कहता हूँ कि अपने मनपर अंकुश रखो।'

बालक राहुलकी समझमें स्त्रीका वह मायाविनी रूप आया ही नहीं, जिसे भगवान् इतने विस्तारसे बता रहे थे। उसकी माँ गोपा सचमुच ही अपूर्व सुन्दरी थी। अपने आँसुओंमें भी मनोहर। उसका आलिंगन कितना सुखद था। उसके बिखरे हुए केशोंसे अपना मुँह ढाँपकर उसे कितनी तृप्ति मिलती थी। किन्तु भगवान् कहते हैं कि उस ओर मत बढ़ो। दूसरी ओर भूखा सिंह भी खड़ा हो तो उसीको श्रेयस्कर मानो।

राहुलके मनमें भगवान्‌के प्रति अन्यथाभाव-सा उपजने लगा था। उसे लग रहा था, जैसे भगवान् उसकी प्यारी माँका अपमान कर रहे हैं।

सन्ध्या समय श्रावस्तीका स्त्री-समाज उपदेश सुनने आया। उस क्षण भगवान्‌के समीप सारिपुत्त, मोग्गलायन, आनन्द और राहुलके अतिरिक्त किसीके रहनेकी आज्ञा न थी। सुदत्तकी भार्याने विनय की, 'भगवान्, हमें हमारा कर्तव्य सुझायें।'

भगवान्‌ने स्थिर दृष्टिसे शून्यको निहारते हुए कहा, 'आयुष्मति, स्त्री घरकी आधार-शिला है। घरकी शान्ति, उसका सुख, उसकी समृद्धि, सब उसीकी धुरीपर घूमते हैं। इसीसे मैं कुलवधुओंको उपदेश करूँगा कि अन्दरकी अग्निको बाहर न ले जाओ। बाहरकी अग्निको अन्दर न लाओ।'

एक स्त्रीने अनुनय की, 'भगवान् अपना आशय स्पष्ट करें।'

भगवान्‌ने कहा, 'तथागत श्रमण भावमें भी लोकविद् हैं। आयुष्मति, सुनें। घरके रहस्य अग्निके तुल्य हैं। अतः घरकी अग्निको बाहर न ले जाओ। बाहरकी कलह अग्निके तुल्य है।

उसका घरमें प्रवेश न होने दो। आयुष्मति, और सुनें और ध्यानसे धारण करें। दाता और अदाता दोनोंको समान भावसे दान करो। दानसे सम्पदा घटती नहीं। वह कीर्ति बनकर बढ़ती है। स्त्रीके लिए उचित है कि सुखके साथ बैठे। सुखके साथ भोग करे और सुखके साथ शयन करे। अग्निकी परिचर्या करे, कुलदेवताका सम्मान करे।'

एक उपासिकाने जिज्ञासा की, 'भगवान्, स्त्रियाँ पतियोंके प्रति नाना व्यवहारवाली हैं। हमें बतायें कि कौन कुलवधुएँ श्रेष्ठ हैं।'

लोकविद्ने उपदेश किया, 'क्रोधी और असहिष्णु स्त्रियाँ पतिसे द्वेष और परसे प्रेम रखती हैं। उन्हें पतिकी सम्पत्ति नष्ट करनेमें ही सुख मिलता है। वे नीच हैं। पतिकी जीविकाके प्रति स्तेन-भाव रखनेवाली पत्नियाँ भी हीन हैं। पतिपर शासनकी कामना रखनेवाली आलसी और कामचोर स्त्रियाँ भी घरके सुखकी शत्रु हैं। किन्तु जो पत्नियाँ मातृसमा हैं, जो पत्नियाँ स्वसृसमा हैं, जो मित्र और दासीके तुल्य हैं, वे सब श्रेष्ठ पत्नियाँ हैं। वे गृहलक्ष्मी हैं। वे आज्ञारत, मधुरभाषिणी, गुरुजनोंका सम्मान और अतिथियोंकी सेवा करनेवाली होती हैं। गृह-शिल्पोंमें प्रवीण, सेवकों तकके कष्टमें सेवा करनेवाली, तथा पतिको दुर्व्यसनोंसे विमुख रखनेवाली होती हैं। इन गुणोंसे युक्त स्त्री जब त्रिरत्न–बुद्ध धर्म और संघमें श्रद्धा रखती हैं तो वह इस लोक और परलोक दोनोंमें ही सुख पाती हैं।'

उपासिकाओंने भगवान्का जय-जयकार किया। शिष्योंने श्रद्धा भावसे भगवान्को नमन किया, किन्तु राहुल माँ गोपाके बारेमें ही सोच रहा था कि वे कैसी पत्नी थीं जो स्वामीको

श्रमण बन जाने दिया। किन्तु अधिक काल तक वह वैसा सोच ही न सका। भगवान्‌की दृष्टिको अपने देहका स्पर्श करते देखा तो उसे लगा – भगवान् दिव्य हैं। लोककी प्रतिक्रियाओंसे बहुत दूर, सर्वथा दूर।"

आचार्य अहिरथ कथा कह रहे थे, "वयके साथ-साथ श्रमण राहुलका बोध भी बढ़ रहा था। उधर संघमें वृद्धि हो रही थी। भगवान् बुद्ध गणराज्योंके समान ही एकराट् शासनों-में भी पूजित थे। मगधका निरंकुश शासक भी भगवान्‌की वन्दना करके कृतार्थता अनुभव करता। तब भगवान् राजगृहमें वैभार पर्वतपर सप्तपर्णी गुहामें वास कर रहे थे। मगध वज्जि राज्य-संघपर आक्रमणकी तैयारीमें था। राजामात्य वस्सकार आक्रमणकी योजना बना रहा था। तब आनन्दने भगवान्‌के सम्मुख अपनी शंका उपस्थित की, 'भगवन्, मगधकी शक्ति अपरिसीमित है। ये छोटे-छोटे गणराज्य कबतक उसके विरोध-को सह सकेंगे ?'

भगवान्‌ने आश्वस्त करते हुए कहा, 'आनन्द, गणराज्य जब-तक सात अपरिहाणीय धर्मोंका पालन करते रहेंगे, तबतक वे अजेय रहेंगे। आनन्द, तुम उपस्थान शालामें भिक्षुओंको एकत्र करो। मैं उन्हें अपरिहाणीय नियमोंका उपदेश करूँगा।'

उपस्थानशालामें भिक्षु एकत्र हुए। भगवान् शालामें बिछे आसनपर विराजे। राहुलसहित अनेक भिक्षु उपस्थित थे। भगवान्‌ने उपदेश किया, 'भिक्षुओ, जबतक भिक्षु संगठित हो सभाओंके आश्रयसे चलेंगे तबतक उनकी हानि सम्भव नहीं। जबतक वे एकच्छन्द हो संघके कार्योंको करेंगे उनकी हानि सम्भव नहीं। जबतक भिक्षु विहितकी मर्यादामें रहेंगे तबतक

उनकी हानि सम्भव नहीं। भिक्षुओ, जबतक तुम धर्म-निष्ठ, सुप्रव्रजित, संघके पूर्व पुरुष, संघनायक स्थविर भिक्षुओंका सत्कार करते रहोगे, तबतक तुम्हारी हानि सम्भव नहीं। हे भिक्षुओ, जबतक भिक्षु तृष्णासे अवश बन कुटियोंमें वास करते रहेंगे उनकी वृद्धि ही होगी हानि नहीं। भिक्षुओ, इस बातको निर्भ्रान्त रूपमें जान लो कि जबतक भिक्षु ब्रह्मचर्यका पालन करते रहेंगे और सुन्दर ब्रह्मचारी संघमें नयी चेतना लेकर आते रहेंगे, तबतक संघकी हानि सम्भव नहीं।'

ये अपरिहाणीय नियम श्रमण राहुलके मनमें उसी तरह गूँजते रहे जैसे गुहामें भटकी ध्वनियाँ गूँजती हैं। ध्वनि-प्रति-ध्वनियोंका घटाटोप-सा उसके मनपर छा गया। वह यह निर्णय कर ही नहीं पाया कि जो अपरिहाणीय नियम भोगोंमें आसक्त जनोंके लिए हो सकते हैं, वे ही प्रव्रजित भिक्षुओंके लिए कौन-सी विशिष्टता रखते हैं। बार-बार उसे यही लगता कि भिक्षुसंघोंमें और उनके बाहर जो जन-प्रसार है, वह मूलतः एक-सा ही है। आवरण और आचरणके भेद प्रकृति नहीं बदल पाये। उस एक प्रकृतिको ही विविध अधिकरणोंमें अंकुशमें रखना है। तो ये नयी व्यवस्थाएँ क्यों? पारम्परिक जीवनसे विद्रोह क्यों?

भिक्षु-संघोंकी कार्य-व्यवस्थामें गणराज्योंकी ही शासन-व्यवस्था पनप रही थी। राहुल नेत्र बन्द कर संघकी व्यवस्था-का चिन्तन कर रहा था। भिक्षु उबालके कुछ अपराधोंपर संघको विचार करना था। संघागारमें संघका सन्निपात हुआ। भिक्षु अजितको उपसम्पदा मिले दस वर्ष हो चुके थे। वह आसन प्रज्ञापक था। उसने ज्येष्ठानुपूर्वी-क्रमसे संघागारमें

भिक्षुओंके बैठनेके लिए आसन-व्यवस्था की। आरम्भमें अपराध-निर्णयके लिए आवश्यक संघपूर्ति ही नहीं हो पायी थी। विनय-धर (अध्यक्ष) ने गणपूरक भिक्षुको गणपूर्तिका आदेश दिया। आदेश देते हुए विनयधरने समझाया, 'भिक्खुनी, सिक्खमानी, सामणेर और अभियोगी गणपूर्तिके बाहर ही होंगे।'

गणपूरक भिक्षुने आदेशका पालन किया। संघका कार्य आरम्भ हुआ। एक भिक्षुने खड़े होकर ज्ञप्ति की, 'भिक्षुओ, संघ मेरी बात सुने। भिक्षु उबालसे संघने इसके अपराधके सम्बन्धमें प्रश्न किये। इसके उत्तर अनर्गल आरोपोंसे भरे, मिथ्या और परस्पर विरोधी हैं। यदि संघ अनुमति दे तो इस भिक्षु उबालको 'तस्सपापीय्यसिका कम्म' का दण्ड दिया जाये।'

फिर ज्ञप्तिकी आवृत्ति हुई। तीसरी आवृत्तिपर विनयधरने घोषणा की, 'संघने तूष्णींभावसे इस भिक्षु उबालके अपराधकी पुष्टि की, यह मेरी धारणा है। भिक्षु उबालको निर्धारित दण्ड दिया जाये।'

बालक राहुल बचपनमें कथाओंमें अनेक ऐसी कहानियाँ भी सुन चुका था, जिनमें राजदण्डकी कठोर और विचित्र व्यव-स्थाएँ होती थीं। उसने कल्पना भी न की थी कि संसार-प्रव्रजित भिक्षुओंके संघमें भी अपराध होंगे और निर्वाणके साधक भिक्षु एक अलग शासनके विधाता होंगे।

ऐसी अनेक घटनाएँ राहुलके सुकुमार मनमें घुमड़ रही थीं। भगवान्‌ने जिन अपरिहाणीय नियमोंका उपदेश दिया था उनमें भी संघकी मान्यताका आग्रह था। संघका सन्निपात होता। मत-संग्रहकी अनेक शैलियाँ थीं। पहले शलाका ग्राहा-पकका निर्णय होता। बिनयधर शलाका ग्राहापकके लिए आव-

श्यक गुणोंकी घोषणा करता, 'स्वरुचिसे मुक्त, द्वेषसे मुक्त, मोह और भयसे मुक्त, लोकसे मुक्त। इन गुणोंसे मुक्त व्यक्ति ही शलाका ग्राहापक हो।'

विनयधर घोषणा करता, 'संघ सुने। छन्ददानके सम्बन्धमें भिक्षु स्वतन्त्र हैं। छन्ददानकी जिस पद्धतिको चाहें उसका आग्रह करें। गूढ़क पद्धतिके पक्षमें हों तो शलाका ग्राहापकके जितने पक्ष हों उतने रंगोंकी शलाकाएँ तैयार रखें। 'सकर्ण जल्पक' रुचिका हो तो प्रत्येक भिक्षु शलाका ग्राहापकके कानमें अपना मत व्यक्त करे। संघको 'विवृतक' पद्धति पसन्द हो तो भिक्षु मुक्त छन्ददान करे। संघ इस विषयपर भी विचार करे कि अन्तिम निर्णय 'भूयसिका क्रिया' (बहुमत) द्वारा मान्य हो या एक छन्द (एकमत) भावसे।'

राहुलको स्मरण था कि अनेक बार ये सब प्रयत्न भी विफल जाते। और तब संघकी एक उप-समिति नियुक्त की जाती जिसे उद्वाहिका सभा कहते। अनेक बार संघकी सभाओंमें बखेड़ा ही मच जाता। वीतरागी कहे जानेवाले भिक्षु कुतर्क करते। मण्डन, कलह और विवाद उठ खड़ा होता। राहुलका पीड़ित मन समझ ही नहीं पाता कि भिक्षु होकर भी जो क्रोध न त्याग पाये, कुतर्कसे न मुक्त हुए, पक्षपातसे पूर्ण हैं, दुराग्रहमें प्रवीण हैं, उन्होंने अपने सहज जीवनको ही क्यों छोड़ा। वर्गित (दलीय) सभाएँ होतीं। आपसी कलह मिटानेके लिए 'तिन-वत्थारक' युक्ति अपनायी जाती। निश्चय एक मतसे हो इसके लिए यह 'तिनवत्थारक' युक्ति अपने शब्दार्थमें कितनी हास्यास्पद थी। राहुल सोचता, 'तिनवत्थारक – तिनकोंसे ढँकनेकी युक्ति। ये कलहकी आँधियाँ, द्वेषके बवण्डर, कुतर्कोंके वात्याचक्र कैसे

तिनकोंसे ढँककर क़ाबूमें रखे जा सकते हैं।'

राहुलको ये प्रसंग भी याद थे जब मतदान अधर्मके कारण, असमान व्यवहारके कारण या यथादृष्टि न होनेके कारण अवैध घोषित कर दिये जाते थे। बहुमतसे पारित ज्ञप्तियाँ भी विवाद-का शमन न कर पातीं। समग्र संघके मत प्रकाशनकी आवश्यकता आ पड़ती। पुस्तपाल संघकी कार्यवाहीको लिपिबद्ध करता। और तब शब्दोंको लेकर कैसा विवाद उठ खड़ा होता। विरोधी दल पुस्तपालकी शब्दावलीसे विरोध प्रकट करते। शान्तिकी खोजमें आये जन भिक्षु होकर भी सच्ची शान्तिसे दूर थे। राहुलके किशोर मनको शंकाओंकी ये नागिनें डस-डसकर मूर्च्छित कर डालतीं। तब उसका मन आश्वस्त होता भगवान्के उपदेशोंसे ही। भगवान्के साक्षात्कार-मात्रसे उसकी समस्त शंकाओंका समाधान हो जाता। किन्तु परोक्षमें फिर शंकाएँ कटु रूप धारण कर लेतीं। प्रजापती गोमतीके आग्रहसे भगवान्-ने स्त्रियोंको दीक्षाका अधिकार दे दिया था। किन्तु यह अधि-कार देकर भी वे प्रसन्न न थे। तभी तो उन्होंने कहा था, 'मैंने सोचा था कि संघ सहस्र वर्षोंकी दीर्घायु प्राप्त करेगा। किन्तु अब स्त्रियोंके आगमनसे मैं अनुभव कर रहा हूँ कि उसकी यह आयु आधी ही रह जायेगी।'

राहुलके भोले मनने एकान्त पाते ही भगवान्की इस घोषणा-से विद्रोह किया था। उसकी समझमें आ ही न रहा था कि स्वयं तथागतका पालन करनेवाली मातृ-तुल्य प्रजापती गोमती-का प्रवेश संघके लिए कैसे घातक हो सकता है। और तथागत-की भार्या जो अनेक जन्मोंमें बोधिसत्त्वकी पत्नी रहकर उसे बुद्धत्वके शिखर तक ले आयी उसकी दीक्षा कैसे संघको दुर्बल

कर देगी। राहुल अनेक बार अपनी शंकाएँ लेकर भगवान्‌के पास पहुँचा। उसने पूछना चाहा कि भगवान्, धर्म स्त्री-पुरुषके प्रति भेद-दृष्टि क्यों रखता है? किन्तु भगवान्‌की दिव्य मूर्तिका प्रभाव उसकी शंकाओंकी वाणीको छीनकर उसे गूँगा ही बना डालता।"

सुनन्दा सूनी-सूनी-सी रहती। आचार्य अहिरथकी करुणा-भरी दृष्टि उसकी उदासीका पहरा देती रहती। शिल्पी-संघ शान्त जलाशय-सा जीवन जी रहा था। सुनन्दाके तर्क और जिज्ञासाएँ जैसे मूर्च्छित हो चले थे। वह श्रोता-मात्र रह गयी थी। अहिरथको उसके तर्क प्रिय लगते थे। अतः उसे उसका यह मौन खलता। कथा कहनेका उत्साह तक मन्द पड़ने लगता। एक दिन उसने सुनन्दासे पूछा भी, "आयुष्मति, कोई दंशन है।"

सुनन्दाने मनोहर नेत्रोंपर-से पलकोंका पट हटाकर उनमें समायी वेदनाके ओघको ही जैसे प्रत्यक्ष कर दिया। पर वाणी शब्दोंका विनियोग कर ही न सकी।

अहिरथने पुनः पूछा, "क्या मैं तुम्हारी वेदनाको नहीं जान सकता देवि!"

सुनन्दाके दाँत उसके अधरको क्षत कर रहे थे। जैसे शब्दोंका स्रोत अवरोधित होनेको हो। अहिरथने पीड़ित स्वरमें कहा, "देवि, अपनी पीड़ासे तुम हार गयीं तो मेरी कल्पनाका वह चित्र अधूरा हो रह जायेगा।"

अब कहीं जाकर सुनन्दा बोली। जैसे कोई स्वप्नमें ही बोला हो, "नहीं, आचार्य, मैं तो निरन्तर उस क्षणकी प्रतीक्षा करती रहती हूँ, जब आप शिल्पी-संघका आवाहन कर कथा प्रारम्भ करें जिससे मैं कथाके अन्त तक पहुँचकर आपको अपनी सृष्टि-

का दान दे सकूँ। एक स्त्री किसी पुरुषको और दे भी क्या सकती है।"

अहिरथको लगा कि सुनन्दाने सभी कुछ कह दिया। उसके देहमें एक ठण्डी-सी लहर डोल गयी। वह सुनन्दाके मुखकी ओर देखनेका साहस तक न कर सका। लौटते हुए कह दिया, "तो चलें आयुष्मति, बाघके तटपर शिल्पी एकत्र हैं।"

अहिरथने अपना शिलासन ग्रहण कर लिया। श्रोता जिस पत्थरके पास थे उसीके सहारे बैठ गये। सुनन्दा भी एक शिलाके पार्श्वमें कुछ ऐसे सटकर बैठ गयी जैसे वही उसकी अन्तरंग सखी हो। अहिरथने सूने आकाशमें दृष्टिके विहगको मुक्त किया। सूर्यकी मन्द पड़ती रश्मियाँ किसी शिखरकी ओटसे आकाशके नीले कमलको खिला रही थीं। प्रतीचीमें रागके अम्बार लगे थे। प्राचीके तटपर सन्ध्या रानी अपने अंगोंको सँवार रही थी। कब उसके कज्जल-से काले केश पूरबसे पश्चिम तक फैली प्रकाशकी किरणोंको पीकर साँवली आभाको निविड़ कर डालेंगे, कल्पनाकी बात न रह गयी थी। अहिरथकी दृष्टि अन्तरिक्षसे टूटकर सुनन्दाके सूखे केशोंमें उलझ गयी थी। सुनन्दा शिलाको बाँहोंसे ढँक भुजाओंके गुंजलकमें अपना मुख छिपाये बैठी थी। काले सिरकी परिधि बनी थीं गोरी भुजाएँ—जैसे रजतपत्रमें बिन तराशा नीलम रखा हो। अहिरथको क्षण-भरको लगा कि वह उसी दिशामें देखता रहा तो कथाका स्रोत सूखा ही रह जायेगा। उसने हठात् कहना आरम्भ किया :

"वह अद्भुत युग था। लौकिकोंकी जातियाँ अधिक थीं, कि भिक्षु-सम्प्रदाय कहना कठिन था। कहीं आहार वृत्तिमें कठोर साधना करनेवाले दिगम्बर आजीवक रमते मिलते तो, कहीं

पीनधारी निगण्ठ मात्र। मुण्ड सावक निगण्ठोंके समान ही जीवन बिताते। उधर केशोंको जटा रूप देनेवाले जटिलक भी होते। परिव्राजक मगण्डिक, तेडण्डिक, अविरुद्धक, गोतमक और देवधम्मिका भी थे। एकसे-एक विचित्र धर्म दर्शन। एकसे-एक विचित्र आचार। आक्रियावादी पूरण कस्सप, नियतिवादी मंक्खलिगोसाल, उच्छेदवादी अजित केस कम्बलि, सात नित्य तत्त्वोंको माननेवाले पकुद्ध कच्चामन, सब बन्धनोंसे रहित निगण्ठ नात पुत्त और संजय वेलट्ठ पुत्त-जैसे आचार्योंके मतका भी प्रचार था। साधारण जनताकी बात तो दूर, अजातशत्रु-जैसा सम्राट् भी इन सबके उपदेशोंको सुनने जाता। अपने बाल्यकालसे ही राहुल अनेक प्रभावोंकी चर्चा सुनता था। किन्तु शास्ताके प्रभावके सामने इन सबकी स्थिति साधारण ही थी। फिर भी समण-ब्राह्मणके सामान्य नामसे स्मरण किये जानेवाले विविध सम्प्रदायोंके किन्हीं भिक्षुओंका जब कोई आचरण सन्दिग्ध लगता तो राहुल एकान्तमें इसी बातपर विचार करता रहता कि आखिर इन्होंने सहज जीवनकी धारासे हटकर भिक्षु-जीवनको अपनाया ही क्यों? सत्यकी साधनासे दूर मिथ्या जल्पनामें फँसे बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले भिक्षु उसके मनको क्षोभसे भर डालते।

भगवान् राजगृहके वेणुवन कलन्दकमें विहार कर रहे थे। तभी आयुष्मान् राहुल अम्बलट्ठिकामें विहार करते थे। एक दिन भगवान् सायंकालीन ध्यानसे उठ राहुलके समीप गये। राहुलने भगवान्को आते देख आसन बिछाया, पाँव धोनेको पानी दिया और भगवान्के आसन ग्रहण कर लेनेपर आप भी पास ही बैठ गये। जिस लोटेके जलसे भगवान्ने चरणोंका प्रक्षालन किया

था उसमें थोड़ा जल शेष था। तलीके शेष जलको दिखाते हुए भगवान्ने कहा, 'राहुल इस शेष जलको देखता है?'

'हाँ भन्ते!' राहुलका सविनय उत्तर था।

भगवान्ने उपदेश किया, 'राहुल ऐसा ही स्वल्प श्रमण भाव है उन भिक्षुओंका जिन्हें जान-बूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं।'

भगवान्ने मिथ्या जीवनकी बुराइयोंको इस प्रकार समझाया। राहुलको लगा जैसे ऐसे ही स्वल्प श्रमण भाववाले भिक्षुओंसे यह धरा भरी है। राहुलके मनमें जो इधर अशान्ति थी वह भगवान्के सम्पर्कसे मिट-सी चली थी। अगले दिन प्रातः वे भिक्षाचारके लिए एक गाँवमें गये। कृश किन्तु कान्तिमान् शरीर। एक गृहस्थके द्वारपर पहुँचे। उनके पहुँचते ही एक शिशु दौड़ा-दौड़ा आया। बोला तो लगा कि तोतलेपनकी सन्धिसे अभी निकला है। मीठे बोल फूटे, 'भन्ते, मुझे अपना गान सुनायें।'

'गान।' भिक्षु राहुलके मुखपर मुसकान खेल गयी। त्रिरत्नके जापमें उसे गायनकी सुगन्ध मिल रही थी। राहुलने उसका आशय समझ लिया था। प्रीतिसे भरकर शिशुको निहारते हुए उन्होंने मधुर स्वरमें कहा, बुद्धं शरणं गच्छामि! धम्मं शरणं गच्छामि!! संघं...........

पर वे संघकी शरण जा ही नहीं पाये थे कि एक प्रौढ़ा दौड़ी-दौड़ी आयी और शिशुको तुरत अंकमें लेकर पीछे हटते हुए उसने किवाड़ बन्द कर लिये। राहुलको लगा जैसे उन बन्द कपाटोंपर माता गोपाकी मूर्ति उभर आयी। माता गोपाने कैसे उसे महाश्रमणकी शरणमें जाने दिया था? तब क्या उसके मनमें कहीं किसी गहरी पीड़ाका स्रोत न फूटा होगा। क्षण-भरको राहुल

बुद्ध, धर्म, संघको भूल माँकी स्मृतिसे अभिभूत हो उठा। उसके होठोंसे अस्पष्ट-सी ध्वनि हुई, 'माँ !' पर तभी जैसे धर्मने वर्जना की, यह स्मृति पाप है श्रमण। मनके बन्धनोंमें फँसानेवाली माया है यह।'

माँ, माया हो गयी। राहुल तेज़ क़दमों विहारकी ओर लौट चला। उस दिन उसने पिण्डचार किया ही नहीं। पता नहीं, मनकी पीड़ासे हारकर या कि भवकी मायासे उबरनेके लिए प्रायश्चित्त स्वरूप।

पर मार्गमें एक बार घटना घटी। सहसा एक तरुणी मार्ग रोककर कह रही थी, 'यह क्या भन्ते ! मेरी भिक्षा स्वीकार किये बिना ही चले जायेंगे।'

राहुल ठिठककर खड़ा हो गया। किन्तु भिक्षा-पात्र उलटा ही रहा। तरुणीने फिर कहा, 'तो आज भिक्षा न लेनेका व्रत है भन्ते ! आप जब भी आते हैं, मैं आपके भिक्षाकी याचना करनेसे पूर्व ही भिक्षा दे देती हूँ और आप चले जाते हैं। पर आज मैं आपके भिक्षा-पात्रमें एक प्रश्न, एक जिज्ञासा डालने आयी हूँ।'

रमणीके हाथ रिक्त थे। राहुलने जाने क्या सोचकर रिक्त पात्रको सीधा कर उसके आगे बढ़ा दिया। पर दृष्टि उसकी प्रश्नाकुल तरुणीके स्थानपर भिक्षा-पात्रमें ही पड़ी थी। तरुणीके मौनको विलम्बित देखकर पूछा, 'जिज्ञासा करो उपासिके, शुद्ध मनसे किये हर प्रश्नका उत्तर दूँगा।'

तरुणीने नाटकीय भोलेपनसे कहा, 'मैं समझी नहीं भन्ते !'

राहुलने समझाया, 'यदि तुम्हारे प्रश्नका प्रयोजन पाप नहीं, अधर्म नहीं तो मैं अवश्य उत्तर दूँगा आयुष्मति !'

तरुणी हँस पड़ी। जैसे हवामें डोलते पुष्पोंकी पँखुड़ियाँ

घुँघरू बनकर गा उठीं। उस हँसीके सम्मोहनसे भिक्षुको सन्देह-ग्रस्त करती हुई बोली, 'पाप क्या है भन्ते! अधर्म क्या है भन्ते! यह तो मैं जानती ही नहीं। तो आज मुझे पापका उप-देश करें, अधर्मका स्वरूप बतायें आयुष्मान्!'

राहुलके मनमें भगवान्‌के अनेक वचन-रत्न उमड़े पर उन्हें तरुणीसे कह नहीं पाया। पापका स्वरूप तो वह स्वयं भी न जानता था। विना उसके सम्पर्कमें आये ही उसने उसके अस्तित्वको इसलिए स्वीकार कर लिया था जिससे धर्मका स्वरूप स्पष्ट हो सके। उसके मनमें विषैली शंका उपजी—तो क्या धर्मका पूर्व पक्ष पाप है?

इस विचारके आते ही उसका देह कंटकित हो उठा। तरुणी सरलताके आग्रहसे पूछ रही थी, 'मेरे प्रश्नका उत्तर भन्ते!'

राहुलने अचानक कह दिया, 'अपने भीतर खोजो उसे आयु-ष्मति, और इतना कहकर स्वयं अपने भीतर झाँकनेकी शक्तिको खोकर आगे बढ़ चला। पर तरुणी इसपर मुक्त होकर हँस पड़ी थी। जैसे मन्दिरकी घण्टियाँ गा उठी हों। उसी हँसीके समयपर दूर जाते राहुलको उदात्त स्वरमें सुनाकर बोली, 'भन्ते, आयुमें तो आप मेरे सखा होने योग्य हैं, फिर भी चीवरधारी बन गये। किन्तु आयुष्मान्, आपने इस धर्म, इस पापको कैसे जान लिया जिसे मैं गृही होकर भी नहीं जान पायी। खैर छोड़ो। पर इतना तो बताते जाओ कि जब तुम्हें माँकी याद सताती है तो उसे तुम धर्मकी पराजय और पापकी विजय तो नहीं मानते?'

रमणीके कोमल स्वरमें गूँजे शब्द वज्र-घोषके साथ किशोर श्रमणके कानोंमें पड़े।

'माँ,' उसके होठ काँपे और वह डालसे टूटे पत्ते-सा मनके

अन्धड़में उड़ चला।"

कथा कहते-कहते अहिरथका स्वर भी काँपा। सुनन्दा सुन्दर ग्रीवा उठाकर अपलक दृष्टिसे आचार्यको देख रही थी। आज उनकी वाणीमें आरोप-अभियोगकी जो व्यंजनाएँ थीं, उनसे जैसे सुनन्दाके तापको चन्दन-लेप मिला। उसकी अपनी सूनी दृष्टिका अभियोग मिट चला था और वह करुणा-ममतासे भरी-आचार्यको देख रही थी। उसके नेत्रोंसे फूटी उन करुणा-ममताकी रश्मियोंने आचार्यको आश्वस्त किया और उनके मुखपर पुनः आत्मविश्वास और धैर्यकी ज्योति चमक उठी।

सन्ध्या सघन हुई। अहिरथका स्वर आक्लान्त हुआ। उसमें कथाका सूत्र आगे बढ़ाया, "उन्हीं दिनों एक और घटना घटी। श्रावस्तीके समीप ब्राह्मणोंके गाँव अन्तग्राममें आयुष्यान् राहुलका उपदेश हो रहा था। आम्रवृक्षोंकी छायामें ग्रामवासी स्त्री-पुरुष एकत्र थे। कई स्त्रियोंकी गोदके बच्चे माँको तंग कर रहे थे, कुछ-एक गोदके सुखमें शयन कर रहे थे। आयुष्मान् राहुलने प्रवचन किया, 'शास्ताने कहा, इन्द्र सोम आदिको पुकारनेमें कल्याण नहीं। यह तो कुछ वैसा ही हुआ जैसे नदीके एक किनारेपर खड़े होकर दूसरे किनारेको पास बुलाना।

यह संसार दुःखरूप है, दु.खमूल है। इस दुःखरूपी जीवन-धाराका आत्यन्तिक उच्छेद किये बिना भव-चक्रसे मुक्ति नहीं; भगवान्का दरसाया 'मज्झिमा पटिपदा' मार्ग ही निर्वाणका मार्ग है। त्रिरत्नकी शरण ले, चार आर्य सत्योंको पहचान, आर्य अष्टांगिक मार्गसे चलते हुए ही निर्वाणके भोक्ता बन सक तेहो। उपासको, जो मार्ग आदिमें कल्याणकारी है, मध्यमें कल्याणकारी है, अन्तमें कल्याणकारी है, उसे छोड़

क्यों जीवनकी धूमिल और संशयग्रस्त वीथियोंमें भटकते हो ?'

एक माँ जिसकी गोदका बच्चा सो चुका था, सहसा शंका कर उठी थी, 'भन्ते, यदि हम सबने उस कल्याणकारी मार्गको अपना लिया तो यह सृष्टि कैसे चलेगी। कोई स्त्री माँ कैसे बनेगी। कोई शिशु नवजीवनको लेकर कैसे विकसित होगा। बोधिसत्त्व कहाँ जन्म लेंगे। बुद्ध कहाँ बोध प्राप्त करेंगे। बतायें भन्ते, कि मैं अपने जीर्ण जीवनके इस स्वरूपको कैसे बुद्ध धर्मसंघको अर्पित कर दूँ।'

राहुलकी दीप्त आकृति धूमिल-सी पड़ गयी। आँखोंमें बेचैनी उमड़ी। उनकी भाषाको कोई पढ़ पाता तो अनायास ही जान लेता कि उसका अपना मन विद्रोह कर रहा था। वह कहना चाहता था कि यह सब मुझसे न पूछो। मेरे पास इसका उत्तर नहीं। मैं भी तो ऐसे ही त्रिरत्नको अर्पित कर दिया गया था। शास्ता देंगे उत्तर। शास्तासे माँगो उत्तर।

पर आयुष्मान् राहुलने जैसे मूक रहकर अपने अन्तःकरणकी आवाज़को स्वयं भी सुननेसे निषेध कर दिया था।

राहुल विहारमें लौटे तो लुटे-से। श्रमणकी एकमात्र निधि शान्ति। जब वही किसीके तर्कों, अपने ही मनके सन्देहोंके बटमारोंने लूट ली हो तो कैसे रहें स्थिर। विहारमें आये और सीधे उस अश्वत्थके पास पहुँचे जिसका पूर्वज बोध गयाका वह पीपल था जिसकी शीतल छायामें भगवान्‌में बोधका उदय हुआ था। नवपत्रोंमें छविमान् प्रायः अपनी ही आयुके उस पीपलके तनेसे लिपटकर उन्हें लगा जैसे अपने किसी अभिन्नको पा लिया हो। आँखोंमें आँसू उमड़ आये और अपने सखाके कन्धेपर सिर रखकर रोते-रोते ही कहते गये 'भगवान्, शास्ता, जब मैं आपके

चरणोंमें बैठकर उपदेश सुनता हूँ तो मुझे वही मार्ग सत्य दीखता है जिसे आपके वचन प्रत्यक्ष करते हैं। पर आपसे दूर होनेपर जाने कैसा हो जाता है मन। शंकाओंसे आकुल। तर्कोंसे पीड़ित। लौकिकोंके कुतूहलोंसे भीत। इन लौकिकोंकी जिज्ञासाओंका उत्तर दूँ भी तो कैसे लोकविद्? मुझे आस्रवोंमें निमज्जित लोक-की ही प्रतिच्छवि जब श्रमणोंके संघमें दीखने लगती है तो मेरी बुद्धि ही मेरा तिरस्कार करने लगती है। देखो न, भिक्षु उपवृत्त-ने सुदास भिक्षुका नवीन चीवर चुरा लिया जो उसे श्रावस्तीकी एक उपासिकाने काशीसे लाकर दिया था। उस दिन सुदन्त भिक्षु भिक्षाचारको निकला तो उसने जिह्वाके रस-लोभकी शरण ले भगवान्‌के निषेधपर भी भिक्षामें तेल खटाईके चटपटे पदार्थ माँग ही लिये। आपने 'दुक्कत' पापका भय भी दिखाया था, पर जिह्वाके स्वादके अधीन होकर वह उससे निर्भय ही रहा। पूर्व भार्याको स्मरण करके रोते रहनेवाला वह विपल भिक्षु स्वयं एक पहेली है। उधर संघकी शरणमें आकर भी भिक्षु पर्जन्य साम-नेरी रक्ताम्बरामें अनुरक्त है। आपका आदेश है कि भिक्षु ऊँची शय्यापर न सोयें, करवट बदल-बदलकर रात्रियाँ न यापित करें, इन्द्रियोंके रसोंसे मुक्त रहें, धर्मकी धारणा करें, किन्तु फिर भी हममें-से अनेक सर्वथा विपरीत आचरण करते हैं। उस दिन एक वृद्ध भिक्षुकी निन्दा पापकर्मके लिए आपने प्रतिसारणा की थी। यह सब क्यों होता है तथागत? गृहस्थ-समाजकी सभी बुराइयाँ तो भिक्षुसंघमें देखनेमें आती हैं। स्थान बदल गया, व्यक्तिका अधिष्ठान बदल गया, पर व्यक्ति नहीं बदला। गृही, अपरिग्रही होकर भी वैसा न हो सका। विकृतियोंका सूत्र गृह-विहारमें मकड़ीके जाले-सा फैलता ही जा रहा है।'

फिर अगले दिन भगवान् श्रावस्तीमें सुदत्त अनाथपिण्डकके

जेतवनमें विहार कर रहे थे। पूर्वाह्न था। भगवान् पिण्डचारके लिए निकले। शंकाओंके पाशसे निबद्ध रात्रि-जागरणसे पीड़ित राहुल भगवान्के पीछे-पीछे हो लिया। राहुलको देखा तो भगवान् जैसे उसके मनकी अशान्तिको जानकर ही उपदेश करने लगे।

'राहुल, पृथ्वी समान भावनाकी भावना कर। ऐसे करते हुए राहुल, तेरे चित्तको अच्छे लगनेवाले स्पर्श चारों ओरसे घेरेंगे नहीं। पृथ्वीपर शुचि अशुचि सभी तरहकी वस्तुएँ फेंकते हैं। पर पृथ्वीको इससे किसी प्रकारकी ग्लानि नहीं होती। घृणा या दुःख नहीं होता। अतः तू भी राहुल, पृथ्वी समान भावनाकी भावना कर। राहुल, अप समान भावनाकी भावना कर। राहुल, तेज समान भावनाकी भावना कर। राहुल, वायु समान भावनाकी भावना कर। राहुल, आकाश समान भावनाकी भावना कर। राहुल, मैत्री समान भावनाकी भावना कर। राहुल, करुणा समान भावनाकी भावना कर।

राहुल, मुदिता भावनाकी भावना कर। राहुल, उपदेश भावनाकी भावना कर।

राहुल, अशुभ भावनाकी भावना कर। राहुल, अनित्य संज्ञा भावनाकी भावना कर।

राहुल, आणापानरति भावनाकी भावना कर। राहुल, यह महाफलप्रद और बड़े माहात्म्यवाली है।'

भगवान्के उपदेशोंके मन्त्रने राहुलके मनमें फुँकारते सन्देहोंके सर्पोंके विषको उस क्षण तो शान्त कर दिया, पर जब वह भिक्षु-संघमें अनियमितताओं और विग्रहोंको देखता तो फिर-फिर चंचल हो उठता। तब भगवान् वत्स देशकी राजधानी कौशा-

म्बीके घोसितारामसें विहार कर रहे थे। तभी एक भिक्षुके विरुद्ध अन्य भिक्षुओंने कुछ आरोप लगाये। किन्तु उस भिक्षुने उन आरोपोंको स्वीकारा नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि संघका सन्निपात हुआ और संघने बहुमतसे उस भिक्षुको संघसे निष्कासित करनेका निर्णय किया।

किन्तु वह भिक्षु पण्डित, नम्र, धर्मका ज्ञाता, प्रज्ञावान्, वाणीका पटु और नियमोंका आचरण करनेवाला था। उसने अपने साथी भिक्षुओंसे जब उस निर्णयको बताया तो वे उन भिक्षुओंके पास उस निर्णयका विरोध करने गये। फलतः दोनों पक्षोंमें उग्र तर्क और कलह हुई और संघके उन दो पक्षोंके बीच गहरी खाई बन गयी। जब भगवान्को यह सारा वृत्तान्त पता चला तो भगवान्ने दण्डका विधान करनेवाले भिक्षुओंसे कहा, 'श्रमणो, तुम्हारा न्याय निर्दोष नहीं। तुम्हें वैसा लगा, दण्डके लिए यह पर्याप्त तक नहीं। जो भिक्षु धर्मज्ञ, विनीत, आचरण-शील श्रमणके विरुद्ध दण्डका विधान करेंगे वे धर्म-द्वेषी हैं।'

इसके पश्चात् भगवान् दूसरे पक्षके पास गये और कहा, 'भिक्षुओ, यदि तुमने कोई अपराध किया है तो यह मत सोचो कि तुम प्रायश्चित्तके परे हो। यह मत मानो कि तुम निर्दोष हो। तुम्हारे दोषोंपर विचार करनेवाले श्रमण धर्मज्ञ, विद्वान्, विवेक-शील, विनम्र, चेतनासम्पन्न और नियमकी मर्यादा माननेवाले हैं अतः उनके निर्णयपर आपत्ति करके दोषके भागी मत बनो।'

दोनों पक्ष एक-दूसरेसे निरपेक्ष हो रहते हुए धर्मानुशासन-का पालन करने लगे। फिर भी कुछ श्रमणोंमें द्वेषकी अग्नि शान्त न हुई थी। उनकी भर्त्सना करते हुए भगवान्ने उपदेश किया, 'भिक्षुओ, वह घृणासे उपवृत्त नहीं हुआ, यदि वह सोचता

है कि अमुकने मेरा अपमान किया, मुझे हानि पहुँचायी, मेरा घात किया। मूर्खों के संगसे तो एकान्त अच्छा। स्वार्थी, झगड़ालू, जिद्दी भिक्षुओंके संगसे तो एकाकी विचरण अच्छा।'

इसी बीच भगवान् कौशाम्बीको छोड़ राहुलसहित श्रावस्ती चले आये थे। भगवान्‌की अनुपस्थितिमें कौशाम्बीमें भिक्षुओंकी कलह फिर बढ़ चली। फल यह हुआ कि सद्धर्मके उपासकोंमें इन भिक्षुओंके प्रति भारी क्षोभ व्याप गया। वे यहाँतक सोचने लगे कि इन्हींके झगड़ोंसे परेशान होकर भगवान्‌ने हमारी नगरीको छोड़ दिया। ऐसे भिक्षुओंका अभिवादन तक पाप है।

जनताकी अश्रद्धाके पात्र बन जानेसे कलही भिक्षु घबराकर भगवान्‌की शरणमें श्रावस्ती दौड़े। सारिपुत्तको जब उनके आगमनका समाचार मिला तो भगवान्‌के पास जाकर बोले, 'भगवन्, कौशाम्बीके कलहकारी भिक्षु यहाँ भी चले आये हैं। भगवान्, इन्हीं भिक्षुओंकी कृपासे संघमें फूट पड़ी और झगड़े मचे। आदेश दें कि उनसे कैसा व्यवहार किया जाये?'

भगवान्‌ने शान्तचित्त रहकर ही कहा, 'आयुष्मान् सारिपुत्त, उन श्रमणोंपर क्रोध न करो। कठोर शब्द औषध नहीं बन सकते और कभी किसीको प्रिय नहीं होते। दोनों पक्षोंको अलग-अलग ठहरा दो। दोनोंसे निष्पक्ष व्यवहार करो। जो श्रमण दोनों पक्षोंके भले-बुरेका सम्यक् चित्त होकर विचार कर सकता है, वही मुनि है, दोनों पक्षोंकी सुनकर संघ उनमें ऐक्य स्थापित करे।'

प्रजापतीके पूछनेपर भगवान्‌ने आज्ञा दी, 'उपासकों और श्रद्धालुओंसे प्राप्त दोनों पक्षोंमें समान भावसे वितरित करो। चीवर और अन्नके वे तुल्य अधिकारी हों।'

तभी उपालि भिक्षुने आकर निवेदन किया, 'भगवन्, क्या यह उत्तम होगा कि विग्रहको बचानेके लिए विग्रहके कारणोंकी पड़ताल किये बिना सौमनस्यकी घोषणा कर दी जाये ?'

तब भगवान्ने समाधान किया, 'नहीं उपालि, ऐसा करना तो ठीक न होगा। विग्रहकी शान्ति तभी होगी जब वास्तविकता-में और मनसे उसका निराकरण हो जाये। तुम्हें काशीके राजा ब्रह्मदत्तकी कथा तो ज्ञात है। काशीके उस प्रचण्ड राजाने कोशलके छोटे-से राजा दीधिति और उसकी रानीका वध करके कैसे अपने जीवनकी शान्तिको खो दिया था। उसे निरन्तर भय बना रहता था कि दीधितिका पुत्र दीर्घायु बुद्धिमान् और कुशल है। वह अवश्य ही पितृघातका बदला लेगा। अन्तमें उसे शान्ति तभी मिली जब राजा ब्रह्मदत्तने अपने मनकी चिरपोषित घृणाको निकालकर दीर्घायुके प्रति सौमनस्य दिखाया। उपालि, घृणासे घृणा कभी शान्त नहीं होती।'

राहुल इस समस्त काण्डका साक्षी था। वह नेत्र बन्द करता तो अनुभव करता कि वह किसी प्रतापी सम्राट्का कृपापात्र है। उस प्रतापी सम्राट्के राज्यमें विग्रह होते रहते हैं, जिनका शमन वह अपने प्रतापके बलसे करनेमें समर्थ होता है। पर जब वह आँखें खोलकर बिहारकी श्रमण भूमिको देखता तो श्रमणोंके लहराते हुए चीवर उसे रुधिर दिग्ध खड्गों-से लगते जिनसे घृणा और द्वेषके आतंककी सृष्टि होती। और तब उसका यह विश्वास कि संघ-जीवन-ही लोक-जीवनका श्रेष्ठ विकल्प है, डोल उठता।"

अहिरथ कथा कह रहे थे : "श्रमण राहुल संघ-जीवनमें पूरी आस्था नहीं पैदा कर पाये थे। किन्तु तथागतके अमित प्रभावके

वशीभूत वे अपने मनके विद्रोहको कभी किसीपर प्रत्यक्ष भी नहीं कर पाते थे। भगवान्‌का व्यक्तित्व उस महान् बरगदकी तरह था जिसकी सहस्रों शाखाओंसे अनन्त जटाएँ निकलकर भूमिमें समा नये स्कन्धोंका निर्माण कर रही हों। फिर उन नये स्कन्धोंसे नयी शाखाओं, नयी छायाओं, नयी सघनताओं, नयी व्याप्तियोंका प्रसार। लगता था एक दिन वह महान् वृक्ष बढ़ते-बढ़ते समुद्र मेखला धरतीका दिगन्तव्यापी छत्र बन जायेगा, जिसकी ओटमें छिपा आकाश अज्ञात हो उठेगा। जैसे महान् वटवृक्षके आस-पासके अन्य वृक्ष बौने लगने लगते हैं, वैसे ही सुगतकी तुलनामें कोई भी बौनेसे अधिक नहीं लगता था। कुमार राहुल·······नहीं कुमार अब नहीं कहना चाहिए। आयुष्मान् राहुल उस महान् वृक्षकी छायामें पनपे एक छोटे-से क्षुपके समान था। उसकी अपनी साँसें अपनी न थीं। वह जीवनका रस अपने आश्रयदातासे लेता। वह उसकी कृपापर ही दूबोंसे कुछ ऊँचा उठकर लहराता। रात्रिमें जब सब क्रियाएँ विश्राम ले लेतीं तब भी भद्र राहुलका मन व्यग्र भावसे चिन्ताकी वीथियोंमें भटकता।

भगवान्‌के व्यापक प्रभावके साथ-साथ संघ विराट् होता जा रहा था। वह चाहे अंग देशकी चम्पा हो या शूरसेनकी मथुरा, वत्सकी कौशाम्बी कि उत्तर कोशलकी श्रावस्ती, सर्वत्र एक ही जन पूजित था और वह था अमिताभका सर्वपूजित व्यक्तित्व। पांचालकी राजधानी काम्पिल्य सौवीरोंकी रोरुक, अवन्ति, माहिष्मती सर्वत्र ही तो तथागतकी ही कीर्ति। जहाँ भगवान्‌के चरण नहीं पड़े वहाँ भी भगवान्‌की कीर्ति-पताका फहरायी। राजन्यवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग, जनवर्ग सभी त्रिरत्नके उपदेशकके समक्ष नमित। श्रेणियोंमें संगठित व्यवसायी वर्ग

जितने उत्साहसे सिन्धुओंका सन्तरण कर दूर-दूरसे सम्पदाका संग्रह करता उतने ही उत्साहसे उसे भगवान्‌के चरणोंमें वितरित करनेको उत्सुक रहता। नये-नये विहारोंका निर्माण हो रहा था। राहुल रात्रिमें जागरणसे पीड़ित इन्हीं सबके बारेमें सोचते। जेतवनका विहार तो अपने समयमें ही कल्पनाओंसे मण्डित हो चुका था। विशाखाने पूर्वारामका दान दिया था। वह भी अद्भुत गाथा थी। विशाखा, अंग जनपद्‌के भद्दिय ग्रामके श्रेष्ठीकी पुत्री। भद्दिय राजा बिम्बिसारका कृपापात्र। फिर कोशल-नरेश प्रसेनजित्‌का भी कृपापात्र बना। उसीकी यशोमती पुत्री विशाखा।

राहुल सोच रहे थे, 'विशाखा, फिर भी समृद्धिकी शाखाओं-से अपूर्ण। उसका विवाह हुआ साकेतके महाश्रेष्ठी मिगारके पुत्र पुष्यवर्द्धनसे। विशाखा बुद्धकी उपासिका किन्तु पुष्यवर्द्धन अचे-लक साधुओंका अनुयायी। एक बार वही विशाखा अपना अनर्घ्य अलंकार उपदेशके समय विहारमें भूल आयी थी। आनन्दने उसे सुरक्षित रख लिया था। फिर जब लौटाने लगा तो श्रेष्ठीकी पुत्री, श्रेष्ठीकी ही पत्नी, वह श्रेष्ठ रमणी नहीं मानी। और बस फिर उसी धनसे श्रावस्तीमें विहार बना। नाम पड़ा पूर्वाराम। विहारोंमें अलंकारोंके सदृश।'

राहुल सोचते गये····इन विहारोंकी नींव श्रेष्ठियोंके स्वर्णदान-पर निर्मित है। वैसे ही बना महावनकी कूटागारशालामें वैशालीका विहार। भगवान् जब कौशाम्बीमें नौवाँ वर्षावास कर रहे थे तब वत्सराज उदयनके एक मन्त्रीने घोसिताराम विहार-का दान किया। जैसा श्रेष्ठीका धन वैसा मन्त्रीका धन। कौशाम्बीके प्रसंगमें आयुष्मान् राहुलको ब्राह्मणकन्या मागन्दिया-

की कथा स्मरण हो आयी। अमित रूपवाली। उसने सोचा था कि विहारोंका दान लेनेवाला उसके रूपका दान भी ले लेगा। निराश हो उदयनकी राजरानी बनी। पर बुद्धके विरुद्ध मनकी आगको बुझा न सकी। सपत्नी सामावती बुद्धकी उपासिका थी। उसकी भक्तिको उसने लौकिक अनुराग समझा। फिर क्या नहीं हुआ। राजभवनोंमें जैसे बीभत्स काण्ड हो सकते हैं अन्यत्र सम्भव नहीं। मागन्दियाकी हिंसाकी आग भगवान् तक तो पहुँच ही न पायी किन्तु उनकी उपासिकाको भस्म करके ही शान्त हुई। एक दिन कौशाम्बीके नागरिकोंकी जिह्वापर एक यही तो चर्चा थी कि राजभवनकी आगमें सामावती जल मरी। मागन्दियाकी ईर्ष्या उसके प्राण ले बैठी।

नहीं समझ पा रहा था राहुल। उस वीतराग व्यक्तित्वके चारों ओर कैसी हलचलें थीं। स्वयं राजकुमार जन्मसे संन्यासी हुए तो राजकुमार भी शरणमें दौड़े। जब भगवान् आठवाँ वर्षा-वास भार्ग जनपदमें भेसकलावनवर्ती मृगदावके समीप सुंसु-मारगिरिपर बिता रहे थे तो राजकुमार बोधि भगवान्का अनु-गत हुआ।

ठीक तिथि-क्रमसे राहुल सोच तक न पा रहा था। कभी अनेक वर्षकी घटनाएँ स्मरण हो आतीं तो कभी तात्कालिक। धर्मप्रचारको पाँच ही वर्ष हुए थे। नहीं पाँचवाँ वर्ष चल रहा था। तब भिक्षुणी-संघकी स्थापना हुई। राजा शुद्धोदनका स्वर्गवास हो चुका था। भगवान्को वैशालीकी कूटागारशालामें संवाद मिला। कपिलवस्तु लौटे। तब जाने कैसे भगवान्ने महाप्रजापतीकी बात मान ली थी। आरम्भमें तो निषेध ही करते रहे। किन्तु सूजी हुई आँखोंसे अश्रुपात करती हुई मलिन-

वसना प्रजापती भगवान्‌का मार्ग ही रोक बैठी। तब जाने कैसे आज्ञा दे दी भगवान्‌ने। पर विचित्र नियमोंसे बँधी थी वह आज्ञा। राहुलके सामने वह दृश्य उपस्थित हो रहा था। भगवान् हैं। उनके प्रिय शिष्य आनन्द हैं। दुखिया प्रजापती हैं। आनन्द भगवान्‌के द्वारा स्वीकृत नियमोंको बता रहे हैं : 'भिक्षुणी सदैव भिक्षुका अभिवादन करे। भिक्षुको अपशब्द न कहे। भर्त्सना न करे। जहाँ भिक्षु न हों वहाँ वर्षावास न करे।'

राहुलको स्मरण था कि ऐसे आठ प्रतिबन्धोंके अधीन प्रजापतीने राज-सुख त्यागा था। पर कैसा वैषम्य था। धर्ममें भी श्रेणियाँ थीं। धर्म भी स्त्रीके प्रति सहिष्णु न था। लोकके संस्कार उसके अपने संस्कार बन रहे थे। तभी न प्रजापती-जैसी पूज्याको हीन अनुशासनमें बाँधा।

हीन शब्द मुँहसे निकल गया था और निकलते-निकलते राहुलको डस भी गया था। उसके अपने जीवनमें ऐसी तर्कणा धर्म बाह्य थी। पर करे भी तो क्या ? उसका मन तो अभीतक पूरा श्रमणभावना धारण ही न कर पाया था।

रात्रि जैसे अनन्त हो चली थी। राहुलकी चिन्ता भी अन्त नहीं खोज पा रही थी। बैरंजामें भीषण अकाल पड़ा। भगवान् वहाँ बारहवाँ वर्षावास कर रहे थे। ब्राह्मण बैरंज त्रिरत्नका अनुयायी हो चुका था। तभी अकाल पड़ा। राहुलको स्मरण था तब वे भिक्षु कैसे दीन हो उठे थे। अन्नके दो दानोंके लिए दीन। ताल-तलैया तक सूख गये थे। जलकी दो बूँदोंके लिए दीन। निर्वाणके अभिलाषी भूखी-प्यासी मृत्युको धरतीमें पड़ी दरारों-से झाँकते देख भीत हो उठे थे। कुछ भिक्षु तो संघ छोड़कर अकालपीड़ित देशसे भाग तक खड़े हुए। इन प्रवृत्तियोंको देख-

कर मोग्गलायन तक विचलित हो उठे थे उन्होंने भगवान्से कहा 'भन्ते अब धर्मकी रक्षा अन्न और जलके बिना सम्भव नहीं।'

भगवान्ने कहा था, 'आयुष्मान्, तुम्हारी दृष्टि तो निर्मल है। तुम धर्मको अन्न-जलका आश्रित माननेकी भूल कैसे कर रहो ?'

मोग्गलायनने कहा था, 'भन्ते, संघका विघटन धर्मका विघटन है। क्षुधासे पीड़ित भिक्षु अन्नदा भूमिकी शरणमें भाग रहे हैं। भगवान्, अपने तपोबलसे इस अकाल दंशित भूमिको सस्य-श्यामला बना दें। इसके सूखे तालोंको शीतल स्वच्छ जलसे आपूर्ण कर दें। इन वृक्षोंकी नंगी शाखाओंको पत्रोंका दान दें। जिन भिक्षुओंके मनमें अश्रद्धा हो चली है। वे इस परिवर्तनको देखेंगे तो श्रद्धाकी शक्ति पा लेंगे।'

किन्तु भगवान्का उत्तर था, 'नहीं मोग्गलायन, नहीं। मैं चमत्कारोंका निषेध कर चुका हूँ। तुम्हें स्मरण है कि मुझे अपने एक शिष्यकी अतिमानवी सिद्धियाँ तब भी प्रिय न लगी थीं जब राजगृहमें उसने अन्य धर्मके आचार्योंको उनसे चमत्कृत करके नीचा दिखाया था। मैं आज भी उन सिद्धियोंका आश्रय लेनेसे इनकार करता हूँ। यह हमारी परीक्षाका काल है मोग्गलायन !'

और राहुल जानते थे कि उस परीक्षामें अनेक विफल हुए थे। जो सफल भी हुए वे भी भगवान्की अनुकम्पासे ही।

राहुल नहीं समझ पा रहा था कि भिक्षु जीवन अपना लेनेपर भी ये सांसारिक कुरूपताएँ क्यों पीछा नहीं छोड़तीं। उसे स्मरण आया—भगवान् श्रावस्तीके न्यग्रोधाराममें पन्द्रहवाँ वर्षावास कर रहे थे। उन्हीं दिनों शाक्यसंघका भद्दिय भगवान्-

की शरणमें आया। भद्दियके श्वसुर सुप्रबुद्ध शाक्यसे यह सहा न गया। उसकी पुत्री पतिके रहते ही विधवा जो हो गयी थी। उसने अपनी पीड़ाको भुलानेके लिए मद्यपान तक किया, किन्तु पुत्रके भिक्षु हो जानेकी स्मृति उसके हृदयको सालती ही रही। तब राहुल बीस वर्षके हो चुके थे। उन्हें वह घटना कलकी घटना-सी याद थी। सुप्रबुद्धने पुत्रीके विलापसे पराभूत हो भगवान्का शरीरघात करना चाहा। किन्तु आवेशके आधिक्य-को उसके स्नायु न सह सके। वह पक्षाघातसे पीड़ित-सा भूमि-पर गिर पड़ा और फिर न उठा। अपने भिक्षु पुत्रको देखने तक न उठा।

राहुल कभी सोचते—'धर्म तो प्रेमका मार्ग है। सब जीवों-के प्रति मैत्री-भावनाका मार्ग है। करुणाका मार्ग है फिर उसकी प्रतिक्रियाएँ इतनी हिंसक क्यों होती हैं। जिस धर्मने भद्दियके रागोंको शान्त किया उसी धर्मने सुप्रबुद्ध शाक्यके द्वेषको क्यों शान्त नहीं किया? तो क्या इसमें विशिष्टता धर्मकी नहीं भद्दियकी है। धर्मसे भी प्रतापी सुगत हैं। जिनके व्यक्तित्वका सम्मोहन इन विचित्र श्रद्धालुओंको अपनी ओर खींचता है। पर सुप्रबुद्ध क्यों उस सम्मोहनसे अजित रहा? क्या भगवान्-का प्रताप भी सीमाओंमें ही रमता है। नहीं, नहीं, नहीं', राहुलके हृदयमें उसका अपना तर्क तीव्र शल्य बनकर गड़ गया था। तभी विद्ध स्वरमें चिल्ला उठा था, 'नहीं, नहीं, नहीं।'

तभी राहुलके सामने देवदत्तकी द्वेष-भरी प्रतिमा ही जैसे आ खड़ी हुई और मायावी शब्दोंमें कहने लगी, 'राहुल, गौतम तुझे शान्ति नहीं दे पायेगा। आ मेरी शरणमें आ। देख, सम्राट् अजातशत्रु भी मेरे प्रभावको मानता है। यह गौतम तपोबलसे

हीन है। मैं तुझे उन सिद्धियोंका स्वामी बना दूँगा जिनके चमत्कारसे तू मरुमें सागर प्लावित कर सकेगा, सागरोंपर सेतु बना डालेगा, हिमालयोंके शिखर बौने हो जायेंगे। समथल कैलाशकी ऊँचाइयाँ पा लेंगे। सुनता नहीं राहुल !'

पर राहुल जानता था कि इन मधुर शब्दोंमें कैसा तीखा विष है। कितना मायावी है यह देवदत्त। द्वेष्टा, धर्मशत्रु। पर इसका व्यवहार ऐसा क्यों? स्वयं भगवान्के गोत्रका। स्वयं उनके पितृव्यकी सन्तान। वही श्रमण रूप। पर आचरण विपरीत। भगवान्की करुणाने इसके द्वेषोंको क्यों नहीं जीता? भगवान्के अमृत उपदेश इसके प्रसंगमें क्यों निरर्थक हुए। तो, क्या यह भी व्यक्तिकी विशिष्टता है धर्मकी नहीं? सद्धर्ममें प्रव्रजित देवदत्त ही सद्धर्मके विधाता सुगत, शास्ता, लोकविद्, लोकचक्षु, तथागत, बुद्ध, सम्बुद्धका शत्रु। उसने तो प्रव्रज्या ले ली। किन्तु उसके राग-द्वेष प्रव्रजित नहीं हुए। तो बोलो भगवान्, यही सब होता रहा तो तुम्हारे इस संघका क्या होगा ?"

उस दिनकी कथा वहीं समाप्त हुई। एकान्त पा सुनन्दाने भी आचार्यसे पूछा, "आचार्य, मैं भी पूछती हूँ कि धर्मका ऐसा विषम प्रभाव क्यों है? आलोकको देखो। स्थान कालके विचार बिना उसका प्रभाव अपनी पूर्ण दीप्तिमें सर्वत्र एक-सा होता है। जलके प्रवाहको देखो। दुष्ट अदुष्ट भूमियोंमें सर्वत्र एक-सा बहता है। अग्निको देखो, हर पदार्थपर एक-सी प्रतिक्रिया होती है। तो धर्म जिसे सूर्यके आलोकके समान होना चाहिए, क्यों वैसा

नहीं ? धर्म जिसे जलके प्रवाहके समान होना चाहिए, क्यों वैसा नहीं ? धर्म जिसे तेजोमयी अग्निके समान होना चाहिए, क्यों वैसा नहीं ?"

आचार्यने सुनन्दाको स्निग्ध दृष्टिसे देखते हुए कहा, "आयुष्मति, शंकाओंमें व्यक्त सत्य असत्यका ही निकटवर्ती होता है। सूर्यका आलोक वृक्षके नीचे सिमटी छायाको प्रकाशित नहीं कर पाता और न कन्दराओंके अन्धकारोंको ज्योतित कर पाता है। ऐसा क्यों देवि ? जिनके मन छायासे संकुचित और आलोकसे पराङ्मुख हैं, जिनके मन कन्दराओंसे घिरे और आलोकके द्वेष्टा हैं, उन तक धर्मका प्रकाश पहुँच ही कैसे सकता है ? आयुष्मति, जलका प्रवाह विषम भूमियोंमें विषम हो उठता है। समतलमें शान्त। ढलानोंपर तीव्र। चट्टानोंके कगारोंपर प्रपात रूप। इतना ही नहीं सुबद्ध तट उसकी धाराको अपने अनुरूप आकृति देते हैं। धर्मकी भी वही दशा है। जैसा मन होगा उसमें धर्मके प्रवाहकी वैसी ही मर्यादाएँ जनमेंगी। इसीसे धर्मका प्रभाव सर्वत्र एक-सा नहीं। और यही सत्य है अग्निका। सूखे काष्ठसे वह चैतन्य होती है। घृत तैलसे प्रचण्ड हो उठती है। जलसे शीतल ही हो जायेगी। उपासकके मनका जैसा भाव है, वैसी ही प्रतिक्रिया होगी धर्मकी अग्निकी। आयुष्मति, ऋजुमनसे अंगीकृत धर्म ऋजु सत्यके रूपमें ही प्रकाशित होगा।"

सुनन्दा श्रद्धासे भरकर आचार्यको निहारने लगी। कोमल दृष्टिसे देखती हुई बोली, "मुझे आगेकी कथा भी सुनायें आचार्य !"

आचार्यने कहा, "किन्तु अब तो विलम्ब हुआ। शिल्पी अपनी रात्रि-कालीन क्रियाओंमें व्यस्त हो चले। तुम भी तो

थकी और भूखी हो। चलो, पहले भोजन करो, फिर विश्राम। अब शेष कथा कल।

"नहीं आचार्य," सुनन्दाने आग्रह किया, "कलकी प्रतीक्षा मुझसे सही नहीं जा रही। मेरा मन राहुलके मनकी तरह तर्क-जालमें फँसा है। तुम्हारी वाणी उसकी उलझनोंको सुलझाने लगती है। उसीको मैं सुनती रहना चाहती हूँ। यहीं, बावके तटपर बैठें आचार्य, चाँदनी रात है, इसके कोमल प्रकाशमें मैं स्वयंको आपके और भी समीप अनुभव करूँगी।"

आचार्यका देह धीरेसे आन्दोलित हुआ। फिर जाने क्या सोचकर कह दिया, "अच्छा आयुष्मति, तो सुनो : "बीस वर्षकी आयुमें राहुलको पूरी उपसम्पदा मिल चुकी थी। फिर भी मनमें समाधिस्थ शंकाएँ कभी-कभी करवटें लेने लगतीं। इसी तरह कुछ और वर्ष बीते। बीतते वर्षोंके साथ कुछ नयी घटनाएँ नये बोध लेकर आयीं। राहुलके तर्क शान्त होने लगे।

भगवान्‌का बीसवाँ वर्षावास था जिसे वे श्रावस्तीमें यापित कर रहे थे। तब कोशल-राज्यमें अंगुलिमालका भारी आतंक था। दुर्गम वनोंमें सार्थवाहोंको उतना भय हिंस्र पशुओंका नहीं लगता था जितना कि अंगुलिमालका। एकाकी वह दीर्घ वन-क्षेत्रमें वनराज-सा अपने आतंकसे शासन करता था। कोशल-राज्यकी समस्त सैन्य-शक्ति भी उस दुर्दमनीयको पराभूत नहीं कर पायी थी। वह था भी इतना उग्र कि जिस किसी मनुष्यको पकड़ पाता उसकी उँगलियाँ काटकर अपने गलेमें माला बनाकर पहन लेता। उसका यह बीभत्स कृत्य ही उसका आतंककारी नाम पड़ गया। गृहस्थोंकी बात तो दूर श्रमण भी उस दिशामें जानेसे डरते, जिस दिशामें अंगुलिमालका खड्ग कौंधा करता।

भगवान् बुद्ध चालिकाके समीपवर्ती वनसे जा रहे थे। साथमें युवा श्रमण राहुल भी था। उस मार्गके संकटोंको जानने-वाले अनुभवी जनोंने भगवान्से प्रार्थना की, 'भगवान्, यह दुर्गम मार्ग है। वन्य-पशुसे भी हिंस्र अंगुलिमालका इसी ओर वास है। सार्थवाह सन्नद्ध होनेपर भी इस दिशामें व्यापारके लिए नहीं जाते। वह मनुष्यरूपमें राक्षस है। उसकी तुलनामें भेड़िये भी सरल और दीन लगते हैं। भगवान् इस मार्गको त्याग दें।'

भगवान् मन्द-मन्द मुसकराये, 'आयुष्मान्, चिन्ता न करें। भयकी भूमि मनुष्यका अपना मन है। तथागत उस भूमिसे कहीं ऊपर उठ चुके हैं। मेरे मनमें हिंसा नहीं इसीसे मुझे हिंसा-का भय भी नहीं।'

बस भगवान् बढ़ चले। राहुल पीछे-पीछे छायावत् चल दिये। वन सघन था। ज्यों-ज्यों आगे बढ़े सघनता बढ़ती गयी। भगवान् अपने तेजसे आप दीप्त नृसिंह-से संचरण करते रहे। तभी घने पेड़ोंको बींधता-सा कर्कश स्वर सुन पड़ा, 'ठहर, श्रमण, ठहर। तू कहाँ भागा जा रहा है। यह अंगुलिमालका राज्य है। उसका कर चुकाये बिना कैसे आगे बढ़नेका साहस कर रहा है?'

भगवान्ने सुना। राहुलने भी सुना। किन्तु भगवान् शान्त भावसे बढ़ते गये। राहुल अनुगमन करते रहे। भगवान्को रुकते न देख पागल-सा अंगुलिमाल आँधी-सा बढ़कर आगे आया और मार्गका अवरोध करके लाल-लाल नेत्रोंसे आतंककी वर्षा करता-सा लोहे-जैसे कठोर स्वरमें बोला, 'सुना नहीं तूने श्रमण, मैंने कहा कि ठहर।'

भगवान् ठहर गये। कोमल दृष्टिसे अंगुलिमालके कठोर अंगोंका स्पर्श करते हुए मृदु स्वरमें बोले, 'अंगुलिमाल, तूने यदि यही जान लिया होता कि कौन ठहरा हुआ है, तो कुछका-कुछ हो जाता।'

अंगुलिमालने बिना उग्रता छोड़े कहा, 'मेरे नाम और उसके विरदको जानते हुए भी तू बढ़ा जा रहा था श्रमण! तेरी अँगुलियाँ कितनी सुडौल हैं? इनकी माला मनोहर होगी।'

राहुल अचरज और आतंकके साथ दो विरोधी शक्तियोंका संवाद सुन रहे थे। भगवान्ने कहा था, 'ला अपना खड्ग ला। तुझे ये अँगुलियाँ प्रिय हैं, तो ये ही उपहारमें ले। किन्तु मेरे पास इससे भी श्रेष्ठ कुछ है देनेको।'

'वह क्या?', अंगुलिमालने अवज्ञासे पूछा।

भगवान्ने उत्तर दिया, 'सत्यका बोध। मैं स्थिर हूँ। मेरी बुद्धि और प्रवृत्तियाँ स्थिर हैं। मेरी इन्द्रियाँ स्थिर हैं। तू अस्थिर है। बवण्डर-सा अशान्त और अस्थिर। मनसे अस्थिर, बुद्धिसे अस्थिर। प्रवृत्तियोंमें अस्थिर। तेरी यह जीव-हिंसा तुझे शान्त सुस्थिर होने ही नहीं देती। तभी तू, जो स्थिर हैं उन्हें कहता है स्थिर हो। स्वयं अस्थिर होकर भी नहीं जान पाया कि स्थिरताका उपदेश स्वयं तुझे चाहिए।'

दीप्त मुखमण्डल। वचनोंमें वशीकरण। नेत्रोंमें अपार करुणा। अंगुलिमालके खड्गकी पकड़ शिथिल पड़ गयी। मुँहसे त्रिधा होकर निकला,....'श्र....म....ण।'

भगवान्ने कहा, 'हाँ, इन्द्रियोंको शान्त करके श्रमण बनना ही कल्याणका मार्ग है। अंगुलिमाल यों आँधी-सा कबतक

डोलेगा। अपनेको पहचान। अपने अन्दरके श्रमणको जाग्रत कर।'

बस अंगुलिमालकी विकरालता शान्त हो गयी। उसके भीतरका श्रमण जाग्रत हुआ। वह भगवान्‌का अनुगत होकर बोला, 'श्रमण, मैं शरणापन्न हुआ।'

राहुलने अचरजसे भरकर देखा। किन्तु जिज्ञासाको शब्द न दे सका। भगवान् मुसकराकर रह गये। उसी दिन सन्ध्या समय विहारमें जब राजा प्रसेनजित् आये तो विनीत भावसे बैठे अंगुलिमालको देखकर विश्वास ही न कर पाये। राजाने मनके आतंकको छिपाते हुए कहा, 'अंगुलिमाल, यह तो भिक्षुओंका निवास है। कैसे आये? तुम्हारे प्रयोजन भला यहाँ क्या सिद्ध होंगे?'

अंगुलिमालने उत्तर दिया, 'राजा, एक यही तो आश्रय है जिसके द्वार सदैवके लिए मुक्त हैं। जिस प्रकार एक राजा यहाँ प्रवेश पा सकता है उसी प्रकार एक डाकू भी।'

प्रसेनजित् आश्वस्त न हुआ। बोला, 'अंगुलिमाल, फिर भी तुम्हारे प्रयोजनकी सिद्धि मैं कर सकूँगा। बोलो तुम्हें कितना धन चाहिए। रत्न, बहुमूल्य कौशेय, अन्नके भण्डार सभी कुछ तुम्हें इच्छा करते ही मिल सकते हैं।'

डाकूने उत्तर दिया, 'तुमने मुझे ठीक समझा नहीं राजा, अंगुलिमालने दान कभी नहीं लिया। और अब तो वह और भी धन-सम्पदामें अनासक्त हो उठा। मुझे बस केवल तीन चीवर चाहिए।'

अब राजाने चमत्कृत होकर देखा तो अनुभव किया कि

डाकूके स्थानपर एक विनीत मनुष्य बैठा था जिसकी उग्र वृत्तियोंपर धर्मके अनुशासनका अंकुश था।

उसने अचरजसे भरकर पूछा, 'यह कैसे सम्भव हुआ भगवान्।'

समीप बैठे राहुलकी जिज्ञासाको ही जैसे राजाने शब्द दिये। वह उत्सुकतासे सुनने लगा। भगवान् कह रहे थे, 'राजा, क्रोधसे क्रोध शान्त नहीं होता। वैरसे वैर शान्त नहीं होता। क्रोधको अक्रोधसे जीतो। वैरको अवैरसे जीतो। तुम्हें स्मरण होगा जब देवदत्तने हिंसावश खूनी हाथीको मुझपर हूल दिया था। पर वह मत्त हाथी तो मेरा मित्र बन गया। मेरे मनमें उसके प्रति हिंसा न थी। तो वह मेरे प्रति कैसे हिंसा बरतता। फिर अंगुलिमाल तो बुद्धिसम्पन्न मनुष्य है, यह कैसे अद्वेष्टासे द्वेष करता।'

राहुलने सुना और इच्छा हुई कि भगवान्‌के चरणोंको अपने वक्षसे लगा, कब-कबके उठे बवण्डरोंको शान्त कर ले।

वह रात्रि भी राहुलने चिन्तनमें ही बितायी। किन्तु वह उसकी सुख-रात्रि थी। उसके मनमें शान्तिका सूर्योदय हो रहा था। तर्कोंका थोथापन उजागर हो चला था। अब उनकी समझमें यह अधिक स्पष्ट हो चला था कि लोकको बुद्धकी आवश्यकता क्यों है? संघ-जीवन क्यों अनुकरणीय है। धर्मका मध्यम मार्ग क्यों श्रेयष्कर है।

गृही भी मनुष्य है। भिक्षु भी मनुष्य है। किन्तु एक राग-द्वेषकी मायासे बिद्ध नाना प्रवृत्तियोंसे भरा सहस्र अरोंवाले चक्र-सा घूमता एक ही परिधिमें जन्म और मृत्युके छोरोंको छूता रहता है। दूसरा जन्म और मृत्युके अन्तरको मिटा उस अक्षय

शाश्वत स्थितिका प्रयोक्ता है जिसकी संज्ञा निर्वाण है। स्खलन इस जीवनमें भी है, स्खलन उस जीवनमें भी है। एकका स्खलन प्रवृत्तियोंको हिंसक बनाता है, किन्तु दूसरेका स्खलन मात्र साधनकी आवश्यकतापर ज़ोर देता है।"

कथा कहते-कहते आचार्य अहिरथका स्वर कुछ लोकोत्तर-सा हो उठा था। सुनन्दाने चमत्कृत होकर कहा, "आचार्य, आपके स्वरमें मैंने जैसे अर्हत् राहुलकी ही वाणी सुनी।"

आचार्य जैसे स्वप्नावस्थामें ही थे, "तुमने क्या सुना देवि!"

सुनन्दाने कहा, "यही कि मेरी साधना दुर्बल है।"

आचार्य मनकी सामान्य स्थितिमें आये। चन्द्रकलशसे चाँदनीकी धारें बरस रही थीं। मुक्तकेशिनी, रूपसे बोझिल अंगोंवाली सुनन्दा लक्ष्मीकी रजतप्रतिमा-सी लग रही थी। सौन्दर्य जब दिव्य हो उठता है तो अवश्य ही ऐसा लगता होगा। आचार्यके मनकी श्रद्धा सुनन्दाकी अनुगता होने लगी। समुचित दृष्टिसे उसे देखते हुए बोले, "सुनो देवि, राहुलके प्रसंगमें उस दिव्य रूपकी कथा भी सुन लो। तब वैशालीकी अम्बपालीके असाधारण रूपकी चर्चाओंसे दिशाएँ तक भरी रहती थीं। वैशालीको अम्बपालीपर इसलिए भी गर्व था क्योंकि उनकी नगर-वधूके चरणोंमें प्रणिपात करने मगधका श्रेणिक बिम्बसार भी अनेक बार चोरोंके समान वैशालीकी यात्राएँ कर चुका था। उन्हें यह कल्पना अत्यन्त मनोहर लगती कि दुर्धर्ष मगध-साम्राज्यके चक्रवर्तीकी मुकुटमणियाँ रूपरानी अम्बपालीकी नखप्रभाके सामने मलिन पड़ें। कितने ही वसन्तोंमें विहार कर, पतझरोंको पार करके भी अम्बपालीका रूप

कालकी यात्रामें रंच-मात्र भी अवसादको प्राप्त न हुआ था। तब भगवान् भी संघसहित वैशालीके लिए प्रस्थान कर चुके थे। साथमें आयुष्मान् राहुल, अंग परिचारक आनन्द, प्रमुख शिष्य सारिपुत्त और मोग्गलायन तथा सहस्रों भिक्षु। गणिका अम्बपालीकी जीवनकी यदि कोई इच्छा अधूरी थी तो यही कि भगवान् उसका आतिथ्य स्वीकार करें। अपने चरणोंको चूमनेवाले मगधराजके विनतभावसे भी उसे वह तुष्टि न मिली थी जो वह भगवान्की कृपामें कल्पित करती थी। जब उसे भगवान्के आगमनकी सूचना मिली तो आरम्भमें तो उत्साहित हुई, किन्तु दूसरे ही क्षण अवसन्न होकर अपनी परिचारिकासे कहने लगी, 'सखि, 'भगवान् क्या इस गणिकाको कृतार्थ करेंगे। मुझे मारकी एक तुच्छ अंगना-मात्र मानकर तो उपेक्षा न बरतेंगे। सखि, वे परम प्रतापी हैं। वीतराग, सम्यक् सम्बुद्ध। उनके दर्शनोंसे लोकरत जीवनकी प्रवृत्तियाँ मिट जाती हैं फिर क्या वे विलास-पंकमें खिलनेवाली इस नगरवधूको इतना सम्मान दे सकेंगे कि वह उनकी आतिथेय बन सके। सखि, जब सोचती हूँ कि कैसे उस महाश्रमणके नामसे सुहागिनोंका सुहाग चंचल हो उठता है, और स्वर्ण-पर्यंकोंपर विलास करनेवाले श्रेष्ठिपुत्र अपनी प्रियाओंका अधूरा शृंगार छोड़कर तीन चीवर ले लेते हैं, तो आशा रह ही नहीं जाती कि मुझे कभी सुजातावाला सौभाग्य मिल सकेगा।

अम्बपालीकी निराशा-भरी बात सुनकर भी दासीने कहा था, 'स्वामिनी, व्यर्थ ही स्वयंको लाघव दे रही हैं। अमिताभसे कम कीर्ति तुम्हारी भी नहीं। आर्यखण्डका वह कौन-सा पुरुष है जो स्वप्नमें भी तुम्हारे दर्शन पाकर धन्य नहीं होता। वह

कौन-सी मानवती रूपवती सुहागिन है जिसका सुहाग तुम्हारी किंकिणीके रणन-मात्रसे चंचल नहीं हो उठता ? देवि, तुम्हारी वंशीमें मन्त्रोंका सम्मोहन है। तुम्हारे गानमें अतिमानवी सिद्धियोंका चमत्कार है। तुम्हारे नृत्यमें वसन्तश्रीका हुलास है। देवि, आश्वस्त हों, भगवान् भी तुम्हारी महत्तासे अनवगत नहीं।'

और जब भगवान् वैशाली पधारे तो आश्रय लिया नगरवधूके आम्रवनमें ही। इस निर्णयके प्रति किसके मनमें अन्यथा भाव नहीं जागा। सारिपुत्र, मोग्गलायनने सोचा, इससे श्रद्धालु क्षुब्ध होंगे। आनन्द जो भगवान्का अन्तरंग था, जिसकी गतिपर कोई प्रतिबन्ध न था, जो भगवान्से शर्तें मनवाकर ही उनका परिचारक बना था, जिसे व्यक्तिगत आमन्त्रण होनेपर भी बुद्धकी सन्निधिका अधिकार था, जिसके हठसे हारकर भगवान् स्वयंको प्राप्त अनर्घ्य भिक्षाओंको उसे नहीं दे पाते थे, उस आनन्दने भी सोचा, सुगत, और नगरवधू। बड़ा वैषम्य है दोनोंके विरुद्धमें।

और राहुल बार-बार भगवान्के पास अपने सन्देहोंको लेकर जाता और लौट आता पर कह कुछ न पाता।

उधर अम्बपालीको जब सूचना मिली तो उन्मादिनी-सी चार अश्वोंवाले रथमें सवार होकर आम्रवनकी ओर चली। भगवान्के दर्शनोंको आनेवाली वही प्रथम थी। आम्रवनकी सीमापर पहुँचकर उसने रथ त्यागा, उपानह त्यागे, अलंकार भी त्यागे और नंगे पाँव, अनलंकृत देह, विनत मन किन्तु प्रबल श्रद्धाके साथ भगवान्की ओर चली। जब भगवानने अम्बपालीको आते देखा तो आनन्दको सम्बोधित करके बोले, 'आयुष्मान्

आनन्द, वह देखो, वह जो देवांगनाओं-सी मनोहर, अमित रूपके ऐश्वर्यसे सम्पन्न, असाधारण गरिमावाली नारी इधर आ रही है वही अम्बपाली है। जैसे अन्धकारसे अक्षय सौन्दर्य-वाली नित्य नवीना उषा प्रकट होती है, वैसे ही इन सघन वृक्षोंके अन्तरालसे, इस क्षीण वीथियोंमें यह अम्बपाली प्रकट हो रही है। आनन्द, भिक्षुओंको आज्ञा दो कि देवी अम्बपाली जब समीप आयें तो नेत्र बन्द कर लें। आनन्द, जैसे चन्द्रकिरणें चन्द्र-मणिपर पड़कर उसे पिघला देती हैं, वैसे ही इस नारीका असा-धारण रूप अपने साक्षात्कारसे पुरुषके मनको पिघला देता है। आनन्द, यदि भिक्षु इसके दर्शनोंसे चंचल हुए तो यह उनकी साधनाकी कमी नहीं, इस नारीके रूपकी शक्ति होगी।'

भगवान्के आदेशका पालन हुआ। अम्बपाली आयी। भगवान्के चरणोंमें कौस्तुभमणिकी कान्तिवाले अपने मस्तकको टेककर बोली, 'भगवन्, यह तुच्छ गणिका आज सनाथ हुई।'

भगवान्ने मृदु अभिनन्दन किया, 'नहीं ऐश्वर्यशालिनी अम्बपाली, तुम सदैव सनाथ थीं। कहो, मैं तुम्हारी कौन-सी प्रीति करूँ।'

नगरवधूने कृतार्थभावसे कहा, 'मेरे घरपर पधारें देव! भिक्षु-संघसहित मुझे सत्कार करनेका गौरव दें सुगत! और तभी मैं आपके उपदेशोंकी पात्र भी बनूँ। यह एक इच्छा है लोकचक्षु!'

'ऐसा ही हो अम्बपाली,' भगवान्ने कहा।

सुनते ही अम्बपाली कुछ इस तरह उठी जैसे किसी दिक्कोण-से कोई सोनघटा झूम उठी हो, जिसे देखकर शिखी नृत्य करने लगे, पिकी गायनमत्त हो उठे और अन्तरिक्षका हृदय सहस्रों

इन्द्र-धनुषोंसे रंगमय हो उठे। उसने भगवान्‌को प्रणाम किया। जानेकी आज्ञा ली। और सुगन्ध-सी उड़ चली। उसके चरणों-के तलेवाली भूमिमें फूल खिल उठे और जब वह आम्रवनसे बाहर हो गयी तो लगा भगवान्‌के तेजोमय वपुसे फूटी एक अतीव मनोहर किरण कहीं दूर जाकर बिला गयी। राजपथपर पवनवेगसे उसने रथ दौड़ाया। भगवान्‌के दर्शनोंके लिए आने-वाले श्रेष्ठिपुत्रों, राजपुत्रों, लिच्छवीकुमारोंकी ओर अवज्ञासे भर-कर देखती हुई विपरीत दिशामें बढ़ चली। उसके रथके चक्कों-से उनके रथके चक्के टकराये, उसकी कशासे उनकी कशाएँ उलझीं। उसकी दृष्टिसे उनकी दृष्टियाँ टकरायीं। जिज्ञासाएँ उमड़ीं, 'अम्बपाली इतनी आनन्द-विभोर क्यों है तू आज ?'

उत्तर मिला, 'मेरा जीवन धन्य हुआ। भगवान् मेरे अभ्या-गत हुए। आज संघसहित उन्हें तृप्त करूँगी।'

राजकुमार पीछे पड़े। बोले, 'अम्बपाली, यह सौभाग्य तू हमें दे दे। बदलेमें चाहे जितना स्वर्ण ले ले।'

अम्बपालीने उपहासपूर्वक कहा, 'तुम्हारा स्वर्ण तो मेरे रूपके चुम्बकसे सदा आकृष्ट हो मेरे कोषोंके मुखोंकी अपेक्षा रखता है। उसकी मुझे चाह क्यों ?'

और वह न रुकी। निराश राजकुमार जब भगवान्‌के पास आये तो भिक्षु-संघ कुतूहल-भरे प्रश्नोंके लिए शब्द न पाकर गूँगा-सा बैठा था। राजकुमारोंने जैसे उन्हींको बात प्रतिध्वनित की, 'भगवन्, अम्बपाली गणिका है ? भिक्षु-संघ कैसे उसकी भिक्षा स्वीकार करेगा ?'

भगवान्‌ने उत्तर दिया, 'उपासको, अम्बपाली साध्वी है, वासनाओंके प्रचण्ड आवेगोंको अपने कोमल देहमें उसी प्रकार

बाँधे रहती है जिस प्रकार कुसुम अपने दलोंमें सुवास। और फिर भी अचंचल, गरिमामयी पवित्र ज्योति-सी। अपने आचरणसे असम्पृक्त। अपनी भावनामें निरी भिक्षुणी।'

'नहीं समझे भगवान्,' अनेकों स्वर एक साथ पूछ बैठे। राहुल उद्‌ग्रीव हो उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगा। भगवान्‌ने कहा, 'आयुष्मान्, तुम देवि अम्बपालीके देहके ही साधक रहे। तुमने स्वर्ण दे-देकर केवल उसकी मसृण त्वचाको ही पाया है। उसके देवसुन्दर देहमें जो पवित्र ज्योति उजागर रहती है, उस तक तुमने कभी पहुँचनेका प्रयास ही नहीं किया। नगरवधू वह तुम्हारे अपने विधानसे बनी। उसने अपने देहको अत्याचारोंको सौंपकर निर्वैर भावसे तुम्हारे गण-धर्मकी रक्षा की। वह अम्बपाली सबके प्रति मुदिता भावना रखनेवाली है। वह मैत्री-भावनासे पूर्ण शुद्ध करुणामें बिहार करनेवाली है। आनन्द, तुमने तो देखा है न देवीको ? बोलो, वासना क्या उसकी छायाको भी छू पाती है।'

लिच्छवीकुमार लौट गये। किन्तु उनके निमित्त राहुलने जो सुना उससे उसकी दृष्टि शंकाओंकी बाढ़को रोक तर्क-जालको छिन्न कर सत्यकी आँचमें तप सम्यक् हो उठी। और उसे माँ गोपाकी याद हो आयी, अम्बपाली उसे अपनी अम्ब-सी प्रिय और पवित्र लगी।"

सुनन्दाने कथा सुनकर कहा, "देवी अम्बपाली धन्य थीं।"

आचार्यने कहा, "हाँ आयुष्मति, वह धन्यता आत्मबोधसे ही सम्भव है।"

सुनन्दाने संकेत समझा। वह जैसे अपने भीतर ही डूब गयी। किन्तु आचार्यने उसे अधिक चिन्तनाका अवसर न देकर

कहा, "रात्रि अतीत होने जा रही है शुभे ! मेरी कथा भी अन्तके समीप हो चली है। बोलो, विश्राम करोगी, या कथाको निःशेष करूँ ?"

सुनन्दाने कहा, "मैंने इतनी विश्रान्ति इससे पूर्व कभी नहीं पायी आर्य ! आप कहें। कथा कहें। निःशेष तो वह इस जीवन-में भला होगी ही कैसे ?"

आचार्यने सुनन्दा-द्वारा ध्वनित अर्थको स्नेहपूर्वक स्वीकार करते हुए कथा आगे बढ़ायी, "भगवान् वैशालीसे लौटे। अजात-शत्रुका कूटनीतिमें प्रवीण अमात्य वस्सकार और सुनीध उन दिनों गंगापार सुदृढ़ नगर दुर्गका निर्माण कर रहा था। भग-वान् वहाँ भी आये। वस्सकारने भगवान्से मन्त्रणा की। भग-वान्ने उसे अपरिहाणीय नियमोंका आख्यान करते हुए कहा, 'जबतक गणराज्य इन नियमोंके अनुवर्ती रहेंगे तबतक वे अजेय हैं।' वस्सकारको इसीसे आवश्यक मन्त्र मिल गया। फिर भगवान् उस नूतन दुर्ग नगरके जिस द्वारसे निकले उसका नाम गौतम नगर और जिस स्थानसे गंगाको पार किया उसका नाम गौतम तीर्थ प्रसिद्ध किया।

इसी प्रकार कुछ काल और बीता। कालकी गति अविच्छिन्न थी। उसका आत्यन्तिक विच्छेद ही निर्वाण तीर्थका तट था। शंकाओंसे मुक्त, आस्थाओंसे युक्त, दिव्य भावनाओंसे भावित आयुष्मान् राहुल अब सामान्य श्रमण न रह गये थे। श्रावस्तीमें अनाथपिण्डकके आराम जेतवनमें विहार करते हुए भगवान्को लगा कि विमुक्तिके लिए जिन धर्मोंके परिपाककी आवश्यकता है राहुलके वे सब धर्म परिपक्व हो चुके हैं। अब राहुलको आस्रवोंके क्षयकी ओर चलना चाहिए। बस भिक्षाचारके बाद

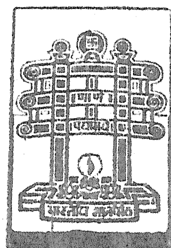
भगवान्‌ने राहुलको अन्धवनमें चलनेको कहा। राहुल आसन ले भगवान्‌के पीछे-पीछे चले। अन्धवनमें प्रविष्ट हो एक वृक्षके नीचे आसनपर बैठकर भगवान्‌ने राहुलको दिव्य उपदेश दिया।"

कहते-कहते आचार्य आकाशचारी चन्द्रमाकी ओर देखने लगे थे, जो क्षितिजसे कुछ ही ऊपर उठा-सा दीख रहा था। उनके स्वरमें असाधारण सम्मोहन भर उठा था जिसकी गूँज बाघ नदीके जलको करुणा-संगीतसे भर रही थी। आचार्यने कहा, "आयुष्मति, उस उपदेशको सुन, आयुष्मान् राहुल आस्रवों-से मुक्त हो अर्हत्-पदपर आरूढ़ हो गये। अन्तरिक्षवासी देवता राहुलकी अर्हत्-पद-प्राप्तिपर साधुवाद करने लगे। आयुष्मान् राहुलके साथ भगवान्‌के उपदेशोंको सुननेवाले वे शत-शत देवता भी विराज हो गये। किन्तु आयुष्मति, मुझे आज तक पता नहीं कि देवी गोपाका क्या हुआ। भिक्षुणी तो बनीं, किन्तु बुद्धपति, अर्हत्‌पुत्रके समीप आनेके बजाय और दूर तो नहीं चली गयीं। देखो देवि, चन्द्रमाके पीछे लगी यह रोहिणी क्या देवी गोपा-सी नहीं लगती और उधर प्राचीके अंकसे उठता हुआ अरुण क्या अर्हत् राहुल-सा नहीं भासता। मेरी कल्पनाका वह चित्र नित्य इन परिवर्तनोंमें उभड़ता है और मिट जाता है। देवि, मुझे तुम्हारी तीव्र संवेदनाओंसे भरी इस रंग-कलाकी ही प्रतीक्षा थी जो मेरी कल्पनाके इस चित्रको उस भूमिकामें प्रस्तुत कर दे जब एक बुद्धपतिको एक प्रवंचिता पत्नी अपने प्रणयकी एकमात्र धरोहर पुत्र सन्ततिको भिक्षा देकर सर्वहारी हो उठे। पर जैसे चन्द्रोदयसे अरुन्धतीका उदय प्रसक्त रहे, उसी प्रकार बुद्धपति और अर्हत्‌पुत्रकी कीर्तिसे उसकी यह दीन गाथा भी अभिन्न रहे।"

सुनन्दा आचार्यके चरणोंमें झुककर कह रही थी, "आचार्य, आर्य, मैं आज तक वन्ध्याका-सा ही जीवन बिताती रही। मेरी इतनी कला सृष्टियाँ भी मुझे मातृत्वकी सार्थकता न दे सकीं। किन्तु आज आपने जो चित्र मेरे मनके पटलपर अंकित कर दिया है, उसे गुहाओंकी पाषाणी छातीपर जब उतार लूँगी तो उस धन्यतासे निश्चय ही भर उठूँगी, जो देवी गोपाने राहुलको जन्म देकर पायी होगी। मैं जानती हूँ, मेरा बुद्ध उसी रात्रि अभिनिष्क्रमण कर जायेगा। किन्तु जब वैसा होना है तो हो। अच्छा आर्य, आज्ञा दें। रात्रि निरवसन हो प्रभातकी ओट-में छिप चली। है न अद्भुत कि अन्धकार प्रकाशमें छिप जाये। मैं भी रजनी-सी अन्धकार रूप हूँ। उस उदित प्रकाशमें मेरा भी तिरोहण होगा।"

बस सुनन्दा मूक हो गयी। नेत्र दो बूँद आँसू टपकाकर अवश्य ही कुछ वाचाल-से हुए। पर आचार्य और सुनन्दाके मध्यमें सीमान्त रेखा-सी उभड़ी शिलापर वे आँसू जो गिरे तो अदृश्य खण्डोंमें विभक्त होकर नाम शेष भी न रहे। और आचार्य यही सोचते रहे कि जिस तरह सम्यक् सम्बुद्धने अबोध शिशुको प्रव्रज्या दे उससे आत्म-निर्णयका अधिकार छीन लिया था, क्या उसी तरह इस सुनन्दाके आत्म-निर्णयका अधिकार भी तो उन्होंने नहीं छीन लिया।





भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण

●

संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

●

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी—५